समरथ

अप्रैल-जून, 2021 ◆ नई दिल्ली

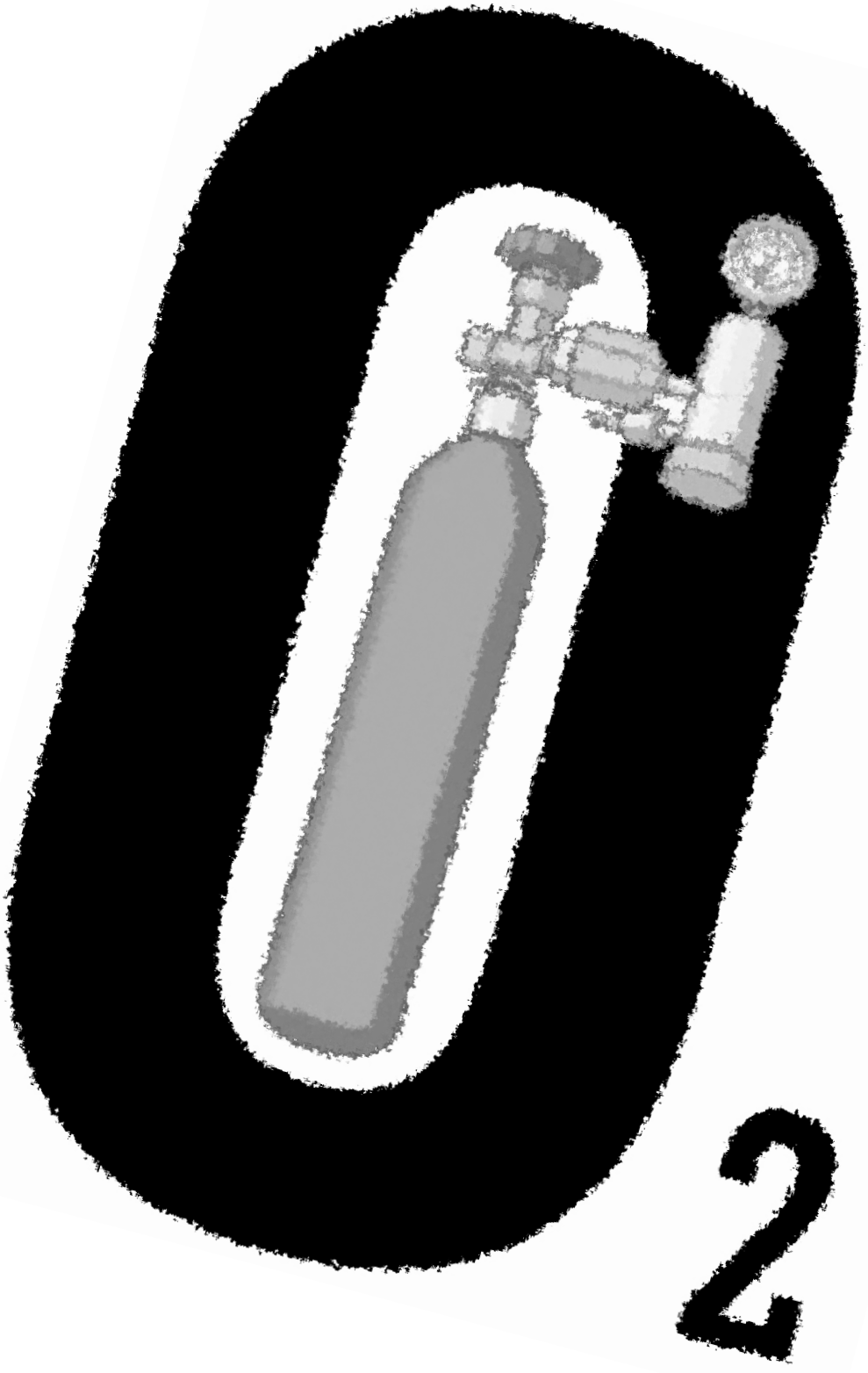

नाहि तो जनम नसाई

जिस समय यह पंक्तियां लिखी जा रही हैं, कोरोना की दूसरी लहर का जोर कुछ टूट रहा है। मगर इसकी आशंका है कि यह तीसरी लहर की शक्ल में और भयानक रूप में सामने आ सकता है। दूसरी लहर के दौरान जहां स्पष्ट चेतावनियों के बावजूद इस प्राकृतिक आपदा से निबटने की प्रशासनिक तैयारियों और स्वास्थ्य सेवाओं के तंत्र की कलई खुल गई वहाँ यह देखने में आया कि किस-किस प्रकार से विभिन्न सरकारों ने अपनी कोताहियों पर पर्दा डालने की कोशिश की। टीकाकरण से संबंधित तरह-तरह के दावों के बावजूद पूरे अभियान में अफरा-तफरी, महामारी में होने वाली मृत्यु की वास्तविक संख्या के बारे में किसी स्पष्टीकरण का अभाव, छोटे शहरों, कस्बों और गांवों ही नहीं देश के बड़े शहरों के अस्पतालों में अफरा-तफरी का वातावरण और बीमारों के परिवारजनों का ऑक्सीजन के लिए दर-दर भटकना आदि ऐसी घटनाएं हैं जिनका हममें से हर एक को अनुभव हो चुका है। मुसीबत की इस घड़ी में जहाँ निर्ममता और निर्दयता के अत्यंत क्रूर दृश्य देखने में आए वहाँ बहुत सी संस्थाओं, व्यक्तियों और आम जनता ने अपने सीमित संसाधनों के बावजूद जिस सेवा भाव के साथ काम किया वो सराहनीय है।

देश आज जिस आर्थिक संकट से गुजर रहा है उसका आरंभ महामारी से कहीं पहले हो चुका था। कोरोना के कहर ने इस पर ऐसी मार लगाई कि पूरी व्यवस्था चरमरा गई। आज हालत यह है कि बेरोजगारी की दर 11 प्रतिशत तक पहुँच गई है, महंगाई की दर भी बहुत ऊँची है। पेट्रोल और डीजल मूल्यों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हो रही है। जिसके लगभग 20 प्रतिशत और बढ़ने की आशंका है। 125 करोड़ आबादी वाले देश में जहां 80 करोड़ लोगों को सात महीने तक मुफ्त खुराक उपलब्ध करानी पड़े और जहां की आधी जनसंख्या मुफ्त खुराक पर निर्भर हो उसकी आर्थिक दशा का अंदाजा लगाना कठिन नहीं और ये सब हमारी गलत नीतियों का ही परिणाम है।

हाल ही में सामने आई कुछ रिपोर्टों में एक ऐसे ख़तरे की तरफ ध्यान दिलाया गया है, जिस पर अगर फौरन तवज्जो नहीं की गई तो उसका ख़ामियाज़ा पूरी एक पीढ़ी को भुगतना पड़ सकता है। इसमें दो राय नहीं कि सभी रुकावटों के बावजूद हमारी जनसंख्या का एक बडा हिस्सा उपलब्ध अवसरों का फायदा उठाकर पिछले दस-पंद्रह वर्षों में अपनी मेहनत के बलबूते पर गरीबी की दलदल से निकलने में सफल हुआ था। जिसकी संख्या करोड़ों में थी। आज दुर्भाग्य से यही लोग एक बार फिर अपनी पिछली हालत में पहुंच गए हैं। इसका नतीजा यह होगा कि करोड़ों बच्चे अपनी शिक्षा अधूरी छोड़ने पर बाध्य हो जाएंगे और अनुमान है कि इन ड्राप आउट्स में लड़कियों की संख्या ज्यादा होगी। ये एक ऐसा संकट है जिसके दुष्परिणाम आज शायद हमें न नज़र आएं मगर ये देश के भविष्य को अंधकार में धकेल सकता है और इससे निबटने के लिए ये आवश्यक है कि जिस प्रकार हम कोरोना से मुकाबले के लिए युद्ध स्तर पर तदबीरें सोच रहे हैं उसी तरह इस संभावित संकट से रू-ब-रू होने के लिए लामबद्ध हों। मगर इसके लिए हमें युद्ध स्तर पर ही कुछ क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे।

अंशु मालवीय

संपर्क : 9170911718

खाण्डव वन

खाण्डव वन जल रहा है
धर्मराज!

वन से उठता गाढ़ा काला धुआँ
हमारी नाक की सुरंगों से होता हुआ
फेफड़ों के गहवरों में पैठता जाता है
हिंसक पशुओं की मानिन्द ...
अँधेरे में चमकती हैं
अंगारों सी आँखें
भय से घिघ्घी बँध जाती है हमारी
और हमारे फेफड़े सूखे हुए अंगूर के गुच्छों की तरह
स्याह, बदरंग रस टपकाते हैं;
राष्ट्र का दम घुट रहा है
योगिराज!
खाण्डव वन जल रहा है!!

नगर सेठों के लिप्सा यज्ञों से तृप्त
राजाओं के वासना यज्ञों से
काम-श्लथ
ब्राह्मण वेशधारी अग्नि को
ऑक्सीजन चाहिए
अपने यौवन को दहकाने के लिए;
उसे चाहिए ताज़ा पेड़ों का लहू
उसे चाहिए पशुओं की चिरायंध
उसे चाहिए ....
इंसानी चीख ....
लकड़ियों की चिटकती कातर पुकार के
पार्श्व में,

'तथास्तु' कृष्ण बोला
'काम हो जाएगा : अर्जुन ने मूँछ पर हाथ फेरा ...
और खाण्डव वन दहक उठा ...

खाण्डव वन जल रहा है
योगेश्वर!

दम घुटने से भाग रहे हैं
पशु रम्भाते हुए
परों से पकड़कर चिड़ियों को वापस लपटों में पटक रहा है
अग्नि;
भील, कोल, किरात, नाग .... अनागरिक जन
एक चुल्लू ऑक्सीजन के लिए छटपटाते हुए
भाग रहे हैं जंगल से बाहर
त्राहिमाम!
खाण्डव वन की चौहद्दी पर खड़ा है कृष्ण,
मैरेय से मत्त हैं आँखें,
खड़ा है अर्जुन
ड्यूटी पर
आग से बचकर भागते लोगों को
मौत के घाट उतारता
वापस अग्नि कुंड में झोंकता ....

हमें ऑक्सीजन बख़्श दो
महाभारत के विजेताओं
ये भारत तुम्हारा
ये महाभारत तुम्हारा
ये धरती, ये धन-धान्य,
ये धर्म, ये नीति
गत-आगत सब तुम्हारा
हमें बस एक सिलेन्डर ऑक्सीजन चाहिए .... मधुसूदन
ये ऑक्सीजन अग्नि का खाद्य नहीं
हमारा जीवन है

तुमने कहा था न!
अग्नि आत्मा को नहीं जला सकता
लेकिन ये वन हमारी आत्मा था और
अब ये जल रहा है

खाण्डव वन जल रहा है
गीतेश्वर!
खाण्डव वन एक विशाल चिता जैसा
धू-धू कर जल रहा है!!

कोविड-19 से मुकाबला और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

■ राम पुनियानी

भारत के कोविड महामारी की चपेट में आने बाद इस बीमारी का इलाज खोज निकालने का दावा करने वालों में बाबा रामदेव शायद सबसे पहले व्यक्ति थे। बाबाओं के क्लब के अग्रणी सदस्य बाबा रामदेव, सत्ता प्रतिष्ठानों के नजदीक हैं। उन्होंने अपने गुरु से योग सीखा और योग शिक्षक से रूप में लोकप्रियता हासिल की। बाद में वे दवाईयां बनाने लगे, जिनमें गौ उत्पाद शामिल थे। इस समय उनकी कम्पनी देश के बड़े कॉर्पोरेट हाउसों में शामिल है। उनके साथी आचार्य बालकृष्ण पतंजलि आयुर्वेद में साझेदार हैं। देश की दवा कम्पनियों में पतंजलि एक बड़ा नाम है। रामदेव और बालकृष्ण कितने पढ़े-लिखे हैं, इस बारे में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बाबा ने कोरोना के इलाज के रूप में कोरोनिल को प्रस्तुत किया। इस दवा ने पूरे देश का ध्यान खींचा। पहले कहा गया कि कोरोनिल को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनुमोदित किया है। बाद में इस दावे को कुछ संशोधित करते हुए बताया गया कि कोरोनिल को विश्व स्वास्थ्य संगठन के 'मार्गनिर्देशों के आधार पर' बनाया गया है। यह दावा भी किया गया कि इस दवा से कोविड का मरीज सात दिनों में ठीक हो जायेगा। कोरोनिल की प्रभावोत्पादकता को साबित करने के लिए एक अध्ययन का हवाला दिया गया। बाद में पता चला कि इस कथित अध्ययन में कोई दम नहीं था। यह दिलचस्प है कि कोरोनिल के लांच के अवसर पर दो केंद्रीय मंत्री मौजूद थे।

पिछले एक साल में इस खतरनाक बीमारी के कई इलाज सामने आ चुके है। आयुष मंत्रालय ने नथुनों में तिल या नारियल का तेल अथवा गाय का घी लगाने का सुझाव दिया। कुछ लोगों ने भाप लेने की बात कही। मालेगांव बम धमाके मामले में आरोपी और भोपाल से लोकसभा सदस्य प्रज्ञा सिंह ठाकुर ने दावा किया कि गौमूत्र का सेवन करने के कारण वे कोरोना से बची हुईं हैं। मध्यप्रदेश की संस्कृति मंत्री उषा ठाकुर का कहना था कि हवन लोगों को कोरोना से सुरक्षा देता है।

स्वामी चक्रपाणी महाराज ने गौमूत्र सेवन और गोबर लेपन को प्रोत्साहन देने के लिए गौमूत्र पार्टी का आयोजन किया। ऐसा ही कुछ गुजरात में कुछ साधुओं द्वारा भी किया जा रहा है। इस सिलसिले में उत्तराखंड के मुख्यमंत्री का बयान गजब का था। उन्होंने आम लोगों को कुम्भ स्नान के लिए आमंत्रित करते हुए कहा कि दैवीय शक्तियां पवित्र स्नान करने वालों की रोगों और हर प्रकार की मुसीबतों से रक्षा करेंगीं। यह अलग बात है कि कुछ साधु कुम्भ के दौरान ही कोरोना से पीड़ित होकर अपनी जान गँवा बैठे और कुछ अन्य इस रोग के वायरस लेकर अपने-अपने स्थानों को सिधारे।

इस तरह की सोच की गंगोत्री का प्रवाह प्रधानमंत्री से शुरू हुआ जिन्होंने पिछले साल अप्रैल में पांच बजे, पांच मिनट तक थालियाँ और बर्तन पीटने का और नौ बजे नौ मिनट तक मोमबत्तियां और मोबाइल की लाइट जलाने का आव्हान किया था।

एक अन्य परमज्ञानी नेता संकेश्वर ने हाल में यह रहस्योद्घाटन किया कि नाक के जरिये नींबू का रस पीने से खून में ऑक्सीजन के स्तर में 80 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। उनके अनुसार, अपने 200 रिश्तेदारों

और मित्रों पर किये गए अध्ययन से वे इस नतीजे पर पहुंचे।

कुल मिलाकर, ऐसे दावे किए जा रहे हैं और ऐसी बातें कही जा रहीं हैं जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। विज्ञान सत्य का संधान करने के लिए विस्तृत कार्यपद्धति अपनाता है। इस समय जिस तरह के दावे किये जा रहे हैं वे आस्था और सामान्य समझ पर आधारित हैं। गाय हमारे वर्तमान सत्ताधारियों के लिए एक राजनैतिक प्रतीक रहा है। उसके मूत्र और गोबर में रोग प्रतिरोधक ही नहीं वरन रोग को हरने की क्षमता भी है, ऐसा दावा किया जा रहा है। पशुविज्ञान हमें बताता है कि मूत्र और गोबर, पशुओं के शरीर के अपशिष्ट पदार्थ होते हैं और वे मनुष्यों के शरीर को लाभ पहुंचा सकते हैं इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।

गाय के शरीर में 33 करोड़ देवी-देवताओं का वास है, यह भी आस्था पर आधारित दावा है जिसका प्रचार-प्रसार सत्ताधारी दल द्वारा किया जा रहा है। यज्ञ और उसमें दी जाने वाली आहुति के सम्बन्ध में भी कई तरह की बातें कही जा रही हैं। सत्ताधारी दल के पितृ संगठन के स्वयंसेवक हवन आदि करने की विधियों का प्रचार करने में जुटे हुए हैं।

इसी बीच, बाबा रामदेव ने एलोपैथी को मूर्खतापूर्ण और दिवालिया विज्ञान निरुपित किया। इस पर इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने जबरदस्त विरोध जताया। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री के पत्र के बाद रामदेव ने अपना बयान वापस ले लिया है। ये वही बाबा रामदेव हैं जो कुछ दिनों के उपवास के बाद आईसीयू में भर्ती रहे थे। उनके साझेदार बालकृष्ण हाल में एक एलोपैथिक अस्पताल में भर्ती थे।

हिंदुत्व की सम्प्रदायवादी राजनीति के उदय के साथ ही पिछले कुछ दशकों से आस्था पर आधारित अतार्किक बयानों औए नीतियों की बाढ़ आ गई है। धार्मिक राष्ट्रवाद हमेशा जातिगत और लैंगिक पदक्रम के पूर्व-प्रजातांत्रिक मूल्यों का हामी रहता है। प्रजातान्त्रिक समाज के उदय के साथ ही अंधश्रद्धा और अंधविश्वासों के खिलाफ संघर्ष शुरू हो गया था। यही कारण है कि पश्चिमी देशों के प्रजातान्त्रिक समाजों में अंधश्रद्धा, अंधविश्वासों और अतार्किक व पश्चगामी आचरणों के लिए न के बराबर स्थान बचा है।

भारत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय और महिलाओं और दलितों से सम्बंधित सामाजिक सुधारों के साथ ही वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा मिला। स्वाधीनता आन्दोलन समाज में तार्किकता को बढ़ाने वाला था। इसके विपरीत, धार्मिक राष्ट्रवाद में यकीन करने वाले न केवल समाजसुधार और औपनिवेश-विरोधी संघर्ष के खिलाफ थे वरन वे वैज्ञानिक सोच के भी विरोधी थे। उनका जोर आस्था पर था क्योंकि आस्था ही समाज में असमानता को वैधता प्रदान कर सकती थी।

हमारा संविधान राज्य से अपेक्षा करता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहन को वह अपनी नीति का अंग बनाए। विघटनकारी राष्ट्रवाद के उदय के साथ ही तार्किक सोच पर हमले तेज हुए हैं। डॉ. दाभोलकर, कामरेड पंसारे, एमएम कलबुर्गी और गौर लंकेश ही हत्या इसी का नतीजा है। हमारे सत्ताधारियों की पूरी विचारधारा ही आस्था और अंधश्रद्धा पर आधारित है। आश्चर्य नहीं कि महामारी के सम्बन्ध में भी अवैज्ञानिक बातें कही जा रही हैं। ये बातें महामारी से मुकाबले करने में बाधक है। रामदेव और उनके जैसे अन्य, आस्था-आधारित ज्ञान के पिरामिड के शीर्ष पर विराजमान हैं परन्तु उनके नीचे असंख्य ऐसे लोग हैं जो इस तरह की चीजों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देना होगा। बर्तन ठोकने और लाइटें जलाने-बुझाने से कुछ होने वाला नहीं है।

साभार,
अंग्रेजी से हिन्दी रूपांतरण अमरीश हरदेनिया

कोविड आपदा, बहुतेरे सवाल और हमारी जिम्मेदारियां

■ सुरेंद्र रावत (आईएसडी)

'**क्या** आपको समझ नहीं आता? अभी आपसे थोड़ी देर पहले भी कहा था कि यह सार्वजनिक स्थान है। आप मास्क ठोड़ी में लगाकर मत घूमिए। उससे अपना नाक और मुंह ढंककर चलें।' इस चेतावनी भरी गरजती आवाज़ की ओर जब ध्यान गया और गौर से देखा तो मालूम पड़ा कि पुलिस वाले की मसूरी के भरे माल रोड़ डंडा दिखाते हुए, सख्त अंदाज में दी गई चेतावनी अपने ही एक सहकर्मी की ग़ैर-जिम्मेदाराना हरकत के लिए थी।

यह किस्सा जनवरी, 2021 का है। आज जब कोरोना की दूसरी लहर ने हमारे सामने जो मंजर पेश किया है, वह इतना डरावना है कि ज़रा-सा खांसी-जुकाम भी मन में भय पैदा कर रहा है कि कहीं मुझे कोरोना तो नहीं हो गया है। और इंसान का यह डर उसके अंदर असुरक्षा की भावना और मौत का खौफ पैदा कर रहा है। ऐसे दौर में हमें क्या किसी से ऊपर दर्ज किस्से जैसी ग़ैर-जिम्मेदाराना हरकत की उम्मीद हो सकती है? नहीं, बिल्कुल नहीं। ऐसी हरकत उस वक्त भी नाकाबिले बर्दाश्त होनी चाहिए थी जब चंद पाबंदियों के साथ आवाजाही की आज़ादी थी। यदि उस आज़ादी का हम लोगों ने सशर्त निर्वाह किया होता और शासन-प्रशासन ने दूरंदेशी दिखाई होती तो भारतीय जनता आज त्राहि-माम, त्राहि-माम की पुकार लिए न होती। आज जिस मंजर से हम गुजर रहे हैं वह हमारे सामने इतना भयावह न होता।

ऐसे वक्त में लोग सोशल मीडिया पर ज़रूरत से ज्यादा एक्टिव हो, तमाम तरह की बातें शेयर कर रहे हैं। जिनमें सुझावों की भरमार है, तरह-तरह के उपाय हैं; योग है, प्राणायाम है; कोरोनिल है, काढ़े हैं; सकारात्मक सोच है, इम्युनिटी बढ़ाने पर दवाएं हैं और मोबाइल प्लान्स की तरह अलनिमिटेड विचारों की भरमार है। मीडिया में देखो यत्र-तत्र-सर्वत्र कदाचार ही कदाचार है। कई कोरोना पर ही सवालिया निशान लिए खड़े हैं और इसे कॉरपोरेट जगत की साजिश करार दे रहे हैं। इसी बलबूते बहुत-से व्यक्तिगत स्वतंत्रता का झंडा लिए लॉकडाउन और मास्क के खिलाफ हाय-तौबा, हाय-तौबा किए हुए हैं और आपदा को भूले बैठे हैं। इन सबके बीच इंसान चौरास्ते पर ठगा-सा खड़ा है। किसकी सुने, किसकी माने।

इस वक्त सावधान रहने की ज्यादा जरूरत है। परंतु क्या मेरे सहकर्मी से इत्तर, आम जनता से इत्तर वे 'खास' जिन पर सिरे से ही सवालिया निशान हैं क्या वे ग़ैर-जिम्मेदारी और असावधानी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। क्या मास्क न पहनने पर 500 से 2000 रुपये का चालान भरना क्या सिर्फ आम आदमी की जिम्मेदारी है। शायद हां, वरना आम आदमी आम कैसे होता। आम आदमी कहीं का 'शाह' तो ठहरा नहीं कि बिना मास्क भरे निज़ाम नियमों को ठेंगा दिखाते हुए उसकी धज्जियां उड़ाता फिरे।

एक तरफ लोकतंत्र के पर्व पर चुनावी रैलियों की भरमार, उनमें बड़ी संख्या में भीड़ का उमड़ना और फिजिकल डिस्टेंसिंग नाम की कोई चीज शायद उस दौरान न बचना, कोविड प्रोटोकॉल का नदारद होना, भीड़ को वायदों के साथ कोरोना भी थमा गया। पश्चिम बंगाल में चुनावी रैलियों के दौरान कोविड प्रोटोकॉल का पालन न होने के कारण ही भारतीय निर्वाचन आयोग को चेतावनी जारी करनी पड़ी। चेतावनी के बावजूद सुरक्षा मानकों का पालन न होते देख आख़िरकर 22 अप्रैल को चुनावी रैलियों पर रोक लगा दी गई। पश्चिम बंगाल में मार्च के दूसरे सप्ताह से तेजी दर्ज की गई तो अन्य चुनावी राज्यों में भी मार्च के आख़िरी और अप्रैल के शुरुआती सप्ताह में संकमण के मामलों में ऐसी ही तेजी देखी गई। हालांकि कोरोना के बढ़ते मामलों और इन चुनावी रैलियों के बीच

सीधा संबंध दिखाने के कोई ठोस आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। परंतु इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि कई ऐसे कारण हैं जो ऐसी रैलियों में संक्रमण को बढ़ावा देने में मददगार साबित होते हैं। जैसे अगर लोग भीड़भाड़ वाली जगह में खुले में भी लंबे वक्त तक रहते हैं तो संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है, यह वैज्ञानिक तथ्य है।

दूसरी ओर कुंभ जैसे विशाल धार्मिक आयोजन में लाखों श्रद्धालु पहुंचे बावजूद इसके वहां सुरक्षा को लेकर पर्याप्त इंतजाम न दिखे। आस्था का अमृत कलश तर्कहीनता की बलिवेदी पर हलाहल विष बन बैठा। जिसने बिना पाप-पुण्य का हिसाब लगाए न तो ध्वज-धारियों को अपनी चपेट में लेने से गुरेज किया न खास-ओ-आम को। कुंभ नगरी से वापिस लौटे ग्रामीणों द्वारा ग्राम क्षेत्रों में फैलते इस हलाहल को पीने 'घर-घर कोई हर-हर...' न था। शहर ही दुर्गति का शिकार थे, तो गांवों का पुर्साहाल कौन होता? इस नाते मरघट वासी की मौज तय थी। परंतु उसे भी इस बात का भान न था कि अमरता की लालसा में पहुंचा इंसान नश्वरता को प्राप्त हो मरघट की आंच में भस्मीभूत न हो, गंगा की गोद में समाएगा।

इस धार्मिक आयोजन को लेकर शुरू से ही आशंका जताई जा रही थी कि इसके कारण ख़तरा पैदा हो सकता है। इसी के मद्देनज़र स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने इस कार्यक्रम को रद्द करने की अपील भी की थी। स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने सरकार को चेतावनी दे दी थी कि देश में एक नया और अधिक संक्रामक कोरोना वायरस का वेरिएंट तेजी से अपने पैर पसार रहा है। उत्तराखंड के पूर्व मुख्यमंत्री त्रिवेंद्र सिंह रावत की योजना शुरुआत से ही इस कुंभ मेले को सीमित और प्रतीकात्मक रूप में आयोजित करने की थी। उन्हें चिंता थी कि कोई स्वस्थ व्यक्ति इस आयोजन में शामिल होने के लिए हरिद्वार आए तो संक्रमित होकर वापिस न जाए। इसलिए उन्होंने कुंभ में आने के लिए 72 घंटे पूर्व की कोविड-मुक्त रिपोर्ट का साथ में होना जरूरी किया था। लेकिन कुंभ मेले से चंद रोज पहले ही तीरथ सिंह रावत को मुख्यमंत्री की कुर्सी सौंप दी गई। सत्ता संभालने के चंद रोज बाद नए मुख्यमंत्री ने पूर्व मुख्यमंत्री के कुंभ में आने के लिए 72 घंटे पूर्व की कोविड-मुक्त रिपोर्ट के फैसले को पलटते हुए उसकी बाध्यता को समाप्त कर दिया और बयान दिया कि 'कुंभ में मां गंगा की अविरल धारा है, उनका आशीर्वाद लेके जाएंगे तो, इससे कोरोना नहीं फैलना चाहिए।' और फिर सरकार ने यह कहते हुए मेले के आयोजन की अनुमति दे दी कि सुरक्षा के मद्देनजर जारी किए गए दिशा-निर्देशों का पालन किया जाएगा। जबकि ऐसे धार्मिक आयोजनों के लिए कागजों में दर्ज बातों का भीड़ से पालन करवाना हकीकत में संभव नहीं हो पाता। नतीजा कुछ समय बाद सबके सामने था लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

इन उपर्युक्त बातों का यह अर्थ कतई न निकालिएगा कि मेरा सहकर्मी या वे लोग, कटघरे के आरोपों से बरी हैं, जो समाज के लिए नीम-हकीम ख़तरा-ए-जान बने बैठे हैं। कटघरे में हर ख़ास-ओ-आम है। जैसा कि मैं पहले भी लिख चुका हूं ये वे लोग हैं जो कोरोना पर ही सवालिया निशान लिए खड़े हैं। कोरोना को सामान्य बुखार मानते हुए इसे कॉरपोरेट जगत की साजिश करार दे रहे हैं। ये अपने आप में चर्चा का विषय हो सकता है। क्योंकि कारोबारी का तो धर्म है मुनाफा। फिर चाहे वह मौका पैदा कर हो या मौके का फायदा उठाकर। पर कौन जाने जो 'चौधरी' बन इसे साजिश करार दे रहे हैं, वे अपनी ही चौधराहट चमका रहे हों? पर इस बाबत ये एक सत्य तथ्य है कि आपदा है और विश्वव्यापी है।

इस आपदा में यूं सवाल बहुतेरे हैं और इन बहुतेरे सवालों के जवाब फिलवक्त नज़र नहीं आते। मात्र संभावनाएं जताई जाती हैं और तर्क-वितर्क नज़र आते हैं। लेकिन संभावनाओं और तर्क-वितर्कों से परे दो मूल प्रश्न भी हैं जो समाज से जुड़े हैं, शासन-प्रशासन से जुड़े हैं, शासन-प्रशासन की योजनाओं और कार्य-प्रणाली से जुड़े हैं। ये मूल प्रश्न उस इंसान की रोटी का है जिनके घर चूल्हा तब जलता है जब दिनभर मेहनत-मजदूरी करके वह दो जून की रोटी का जुगाड़ करता है। कह देना आसान है कि घर में रहो सुरक्षित रहो। ऐसे में वह क्या करे, कहां जाए? उसे तो इतना भी नहीं सूझता कि वह ईश्वर से अपने लिए मौत मांगे या रोटी... मौत मांगे तो कफ़न-दफ़न का इंतज़ाम कौन करे, कैसे करे? सो वह ले-देकर रोटी के लिए दर-बदर भटकने को मजबूर है।

प्रश्न इंसान के इलाज का है। जिसे मुहैय्या कराना शासन-प्रशासन की जिम्मेदारी थी। परंतु भारत का स्वास्थ्य तंत्र खुद ही हाँफे बैठा अपनी अंतिम सांसें गिनता नज़र आ रहा था। बावजूद इसके ऑक्सीजन की कमी के कारण मौतों से किसी की पेशानी पर बल तक पड़ते नज़र न आए। सत्ता पक्ष द्वारा विपक्ष की बातों को सुना-अनसुना किया गया बिना यह विचारे कि ये बातें असल में आम आदमी की आवाज़ है।

क्या यही लोकतंत्र है? सिकुड़ते दायरों का? उखड़ती साँसों का? सहकर्मी की ग़ैर-जिम्मेदाराना हरकत भरा-सा?

21 साल के सरपंच ने अपने गांव को कोरोना से कुछ ऐसी जीत दिलाई कि सभी कर रहे तारीफ

■ शोभित शील

कोरोना संक्रमण की दूसरी लहर के आते ही देश भर में स्वास्थ्य सेवाएँ चरमराती हुई सी नजर आने लगीं। शहरों में बेहताशा बढ़ते नए कोरोना मामलों के बीच अस्पतालों में ऑक्सीजन बेड की कमी, इलाज के लिए बेहद जरूरी दवाओं की किल्लत और यहाँ तक कि श्मशान घाट में भी लोगों को अपने परिजनों के अंतिम संस्कार के लिए घंटों इंतजार करने की नौबत आ गई। इस सब के बीच यह माना गया कि कोरोना संक्रमण के ग्रामीण इलाकों में दस्तक देने के साथ ही हालात और भी अधिक बेकाबू हो सकते हैं, हालांकि आधिकारिक आंकड़ों में ऐसा कुछ नजर नहीं आया। इसी बीच कई गांवों से ऐसी खबरें भी सामने आईं जब गाँव के लोगों ने कोरोना संक्रमण से बचने के लिए सराहनीय कदम उठाए। ऐसे ही एक 21 साल के सरपंच की चर्चा आज हर तरफ हो रही है।

कोरोना से दो कदम आगे

महाराष्ट्र राज्य के सोलापुर स्थित घाटणे गाँव ने कोरोना संक्रमण की घातक दूसरी लहर के बीच कुछ ऐसा कर दिखाया है कि इसे एक मॉडल के रूप में देखा जा रहा है। करीब 15 सौ की आबादी वाले इस गाँव ने कोरोना संक्रमण की दूसरी लहर का मुकाबला एकदम युद्ध स्तर पर किया है। गाँव को इस मुहिम में आगे खड़ा करने का सबसे अधिक श्रेय गाँव के 21 साल के सरपंच ऋतुराज देशमुख को जाता है।

जब दूसरी लहर ने दी दस्तक

जब कोरोना महामारी की पहली लहर ने देश में अपना कहर बरपाया तब किसी तरह घाटणे गाँव के लोग खुद को बचाने में सफल हो गए, लेकिन दूसरी लहर के आगमन के साथ ही गाँव के एक घर में दो लोग कोरोना पॉजिटिव आ गए और इन दोनों की ही अप्रैल महीने में मौत हो गई। इन दो मौतों के बाद गाँव में डर का माहौल सा बन गया और इस दौरान लोग सहम गए। इस डर के बाद लोगों ने अपने खेतों में ही रहना शुरू कर दिया। संक्रमण के खतरे को देखते हुए सरपंच ऋतुराज ने गाँव में ही एक टीम का गठन किया और 'बी पॉजिटिव, अपने गाँव को रखो कोरोना नेगेटिव' नाम से एक कैम्पेन शुरू किया। इस दौरान सरपंच ने घर-घर जाकर लोगों से बात करते हुए उन्हे कोरोना के प्रति जागरूक करना शुरू किया और इसी के साथ ग्रामीणों के भीतर से कोरोना को लेकर बना भय भी कम होना शुरू हुआ।

कैसे किया ये सब ?

ऋतुराज ने अपने गाँव को बचाने के लिए एक पाँच सूत्रीय कार्यक्रम तैयार कर उसे लागू किया। इसके तहत गाँव में संभावित कोरोना मरीज को ढूंढना, संक्रमण होने के साथ मरीज तक इलाज पहुंचाना, जरूरत पड़ने पर ऑक्सीजन की व्यवस्था करना और मरीज का तापमान चेक करना, कोविड नियमों का पालन सुनिश्चित कराना और इसी के साथ वैक्सीनेशन का काम तेज करना शामिल है। इस काम को करने के लिए 4 आशा वर्कर की भी मदद ली गई। अभियान के तहत लोगों के घरों में एक-एक कोरोना किट उपलब्ध कराई गई, जिसमें मास्क, साबुन और सैनेटाइजर आदि शामिल है। गाँव में संक्रमण को फैलने से रोका जा सके इसके लिए एंटीजेन टेस्ट की भी सुविधा उपलब्ध है।

इस सब के साथ ही गाँव में फिलहाल दो वैक्सीनेशन सेंटर भी उपलब्ध हैं। सरपंच की मानें तो गाँव में 45 वर्ष से अधिक उम्र वाले 70 प्रतिशत लोगों को कम से कम पहला डोज लगाया जा चुका है। ऋतुराज अपने गाँव वालों को वैक्सीन के प्रति भी लगातार जागरूक कर रहे हैं और यही कारण है कि गाँव के लोग वैक्सीनेशन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं।

साभार : https://yourstory.com/hindi/

कोरोना काल के दौरान महज एक रुपये में ऑक्सीजन सिलेंडर उपलब्ध करा रहा है यह शख्स

■ शोभित शील

कोरोना संक्रमण की दूसरी घातक लहर के बीच जब देश भर में ऑक्सीजन समेत तमाम अन्य जरूरी मेडिकल सुविधाओं को लेकर हाहाकार मच गया तब देश के तमाम कोनों से लोग जरूरतमंद लोगों की मदद के लिए सामने आने लगे। इसी बीच उत्तर प्रदेश के एक व्यापारी ने इस कठिन समय के बीच लोगों की मदद के लिए ऐसा तरीका अपना लिया कि उनके प्रयासों की तारीफ हर जगह होने लगी है।

उत्तर प्रदेश के हमीरपुर स्थित रिमझिम इस्पात फैक्ट्री ने कोरोना काल के दौरान अस्पतालों और जरूरतमंद लोगों को महज एक रुपये में ऑक्सीजन सिलेन्डर उपलब्ध कराने का काम किया। मालूम हो कि इस फैक्ट्री में 24 घंटे में करीब 1 हजार से भी अधिक ऑक्सीजन सिलेन्डर रिफिल किए जा रहे हैं।

रिमझिम इस्पात फैक्ट्री के प्रबन्धक मनोज गुप्ता ने बताया कि कोरोना महामारी को देखते हुए प्रबंधन ने इस बात पर गौर किया कि इस समय ऑक्सीजन एक महत्वपूर्ण कारक का काम कर रही है। चूंकि फैक्ट्री ऑक्सीजन उत्पादन का काम करती है इसलिए इन कठिन परिस्थितियों को देखते हुए फैक्ट्री में उपलब्ध ऑक्सीजन का उपयोग कोरोना संक्रमित लोगों की जान बचाने के लिए किए जाने का फैसला किया गया है।

फौरन उपलब्ध है ऑक्सीजन

इस ऑक्सीजन प्लांट के जरिये फैक्ट्री प्रबंधन अब सभी सरकारी और गैर-सरकारी अस्पतालों के लिए महज एक रुपये में ऑक्सीजन रिफिल की जा रही है। प्लांट में लगातार ऑक्सीजन रिफलिंग का काम किया जा रहा है और फिलहाल प्रदेश का कोई भी कोविड अस्पताल यहाँ पहुँचकर ऑक्सीजन सिलेन्डर ले सकता है। इतना ही नहीं, अगर किसी व्यक्ति को अपने मरीज के लिए भी ऑक्सीजन की आवश्यकता है तो उसे भी महज एक रुपये में ही ऑक्सीजन रिफिल की जा रही है।

व्यक्तिगत तौर पर ऑक्सीजन रिफिल के लिए आए हुए लोगों को इस दशा में मरीज की मेडिकल डिटेल और डॉक्टर द्वारा जारी किए गए प्रमाण पत्र (मेडिकल प्रेसक्रिप्शन) को फैक्ट्री आकर दिखाना होगा। एक रुपये कीमत पर बात करते हुए मनोज गुप्ता ने बताया कि वह नहीं चाहते हैं कि लोग इसे दान समझें, इसी लिए वह एक रुपये कीमत भी ले रहे हैं।

सरकार ने भी की तारीफ

कुछ समय पहले प्रबन्धक मनोज गुप्ता खुद कोरोना वायरस संक्रमण की चपेट में आ गए थे। मनोज के अनुसार अपने अनुभव को देखते हुए वे अन्य कोरोना मरीजों की तकलीफ को भी समझते हैं और इसी के चलते उन्होने यह फैसला लिया है। मालूम हो कि फैक्ट्री प्रबंधन ने अपने काम में आने वाली ऑक्सीजन की कटौती कर उसे लोगों में बांटने का सराहनीय काम किया है।

मनोज गुप्ता के इस फैसले की चर्चा एक ओर जहां हर तरफ हो रही है, वहीं खुद शासन-प्रशासन ने उनके इन प्रयासों को सराहने का काम किया है और फैक्ट्री के प्रबंधन को उनके इस नेक काम के लिए बधाई दी।

साभार : https://yourstory.com/hindi/

कोरोना काल में आमदनी हुई बंद फिर भी जरूरतमंदों को मुफ्त में खाना खिला रहे डब्बावाले

■ शोभित शील

मुंबई में डब्बावाला को उनकी समय पाबंद सेवाओं के लिए जाना जाता है। कम पैसे लेकर बेहतरीन सेवा देने के लिए पहचाने जाने वाले डब्बावाला आज कोरोना काल के इस कठिन दौर में अपने नेक काम के साथ एक बार फिर चर्चा बटोर रहे हैं। कोरोना महामारी के दौरान जरूरतमंद लोगों की मदद करने के लिए इस समय मुंबई के डिब्बावाले एक खास पहल के तहत आगे बढ़ रहे हैं। इस पहल के तहत मुंबई में तमाम स्थानों पर आज जरूरतमंद लोगों को मुफ्त में खाना खिलाया जा रहा है।

मुफ्त में शुद्ध खाना

अपनी सिग्नेचर सफेद पोशाक और गांधी टोपी लगाए इन डब्बावाला के अनुसार इस दौरान अस्पतालों के बाहर मरीजों के साथ आए परिजनों के लिए एक वक्त के खाने का इंतजाम करना भी मुश्किल साबित हो रहा है और ऐसे में वे इन सभी जरूरतमंद लोगों की मदद के लिए लगातार खड़े हुए हैं।

डब्बावाला इस दौरान कोविड अस्पतालों के बाहर लोगों को मुफ्त में खाना बांटने का काम कर रहे हैं। डब्बावाला शुद्ध खाने के साथ ही लोगों को पानी की बोतल भी उपलब्ध करा रहे हैं।

खाना बांटने के दौरान इस काम में जुटे सभी डब्बावाला पूरी तरह से कोविड प्रोटोकॉल का पालन कर रहे हैं, इसी के साथ खाना लेने आए लोगों को भी इस दौरान सोशल डिस्टेन्सिंग का पालन कराया जा रहा है।

खुद जुटाया धन

मरीजों के साथ आए तीमारदारों के अनुसार डब्बावालों की इस पहल के जरिये उन्हें ऐसे कठिन समय में भी खाना मिल पा रहा है जब लॉकडाउन के चलते अस्पतालों के बाहर खाना ढूँढना काफी मुश्किल साबित हो रहा है क्योंकि अधिकतर ढाबा और रेस्टोरेन्ट इस दौरान बंद चल रहे हैं।

इस नेक काम के लिए डब्बावाला खुद अपनी तरफ से पैसे दान करते हैं, इसी के साथ ट्रस्ट के माध्यम से भी मदद राशि जुटाई जाती है। इस नेक काम में जुटे डिब्बेवालों का मानना है कि उनकी परिस्थितियां चाहें जैसी भी हो लेकिन वह मानवता को आगे रखते हुए इस काम में लगातार जुटे हुए हैं।

कठिन दौर से गुजर रहे हैं डब्बावाला

चाहे मुंबई की भयानक बरसात हो या तेज गर्मी, मुंबई के डब्बावाला अपने काम को कभी थमने नहीं देते हैं, लेकिन कोरोना महामारी के साथ लगे लॉकडाउन के चलते मुंबई के डब्बावालों का काम अब एकदम थम सा गया है, जिससे उनकी आजीविका इस दौरान बुरी तरह प्रभावित हुई है, हालांकि इस कठिन दौर के बावजूद डिब्बावाले लोगों की मदद को सबसे आगे खड़े नजर आ रहे हैं।

मुंबई में लॉकडाउन के साथ लगाए गए प्रतिबंधों के तहत लोकल ट्रेनों पर भी रोक लगी हुई है ऐसे में अधिकतर डब्बावाला की आमदनी इस दौरान शून्य हो चुकी है। ऐसे स्थिति से निपटने के लिए कई डब्बावाले इस समय छोटे-मोटे काम कर रहे हैं। मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार पहले जहां एक डब्बावाला औसतन 20 से 22 हजार रुपये महीने कमा लेता था, वे अब बामुश्किल हर महीने 6 हजार रुपये भी नहीं कमा पा रहे हैं।

द हिन्दू की एक रिपोर्ट के अनुसार मुंबई के डब्बावाला ने इस दौरान रेस्टोरेंट से खाना डिलीवर करने को लेकर भी अनुबंध किया है, जिसके तहत इस कठिन दौर में उनकी आय के लिए नए स्रोत खुलते हुए नजर आ रहे हैं।

साभार : https://yourstory.com/hindi/

कोविड-19 महामारी में गरीबों का पेट भरने के लिए भारत भर में साइकिल से घूम रहा फिलेम

■ रविकांत पारीक

कोविड-19 महामारी के बीच गरीबों को खाना खिलाने के लिए अपने 'फीडिंग द हंग्री' अभियान के माध्यम से, फिलेम रोहन सिंह ने कोलकाता से दिल्ली तक साइकिल चलाई। इस दौरान उन्होंने चेन्नई और बेंगलुरु को भी कवर किया। फिलेम रोहन सिंह मणिपुर के छोटे से शहर मोइरांग से हैं। साइकिल चलाने का जुनून उन्हें अपने बचपन से ही था। साल 2017 में, दिल्ली में एक घटना के बाद इनका यह जुनून समाज और मानवता की भलाई के लिए योगदान करने में बदल गया।

लगभग एक साल पहले, जब महामारी अपने चरम पर थी, रोहन ने मणिपुर में ''फीडिंग द हंग्री'' अभियान शुरू किया, जिससे प्रत्येक दिन 50-60 लोगों को भोजन मिलता था। फरवरी 2021 में, उन्होंने इस अभियान को चार प्रमुख महानगरों—कोलकाता, चेन्नई, बेंगलुरु, और दिल्ली में विस्तारित करने का फैसला किया—दो महीनों में 4000 से अधिक लोगों को भोजन दिया।

भूख को खत्म करना

अपनी दो महीने की लंबी यात्रा में—5 फरवरी से 8 अप्रैल तक—रोहन ने कोलकाता, चेन्नई, बेंगलुरु से शुरू होकर 5,000 किमी की दूरी तय की और अंत में इसे दिल्ली में समाप्त किया। उनके अनुसार, कोविड-19 महामारी के बीच सरकार द्वारा निर्धारित सभी प्रोटोकॉल का पालन करते हुए यात्रा अविश्वसनीय रूप से चुनौतीपूर्ण थी। यात्रा के दौरान अपनी ऊर्जा को बनाए रखने के लिए, उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार पेडल किया और एक दिन में लगभग 90-100 किमी की यात्रा की, और लोगों से बातचीत करने और खाना खिलाने पर अधिक ध्यान केंद्रित किया।

हालांकि, महामारी में सिर्फ भोजन और राशन से अधिक कई दूसरी चीजों की आवश्यकता होती है। इसके लिए सुरक्षा उपाय के बारे में जागरूकता लाने और स्वच्छता का अभ्यास करने की भी आवश्यकता है। रोहन का कहना है कि उन्होंने स्वास्थ्य और स्वच्छता को प्राथमिकता दी, और हमेशा मास्क पहना और अपने साथ सैनिटाइज़र ले गए।

वे कहते हैं, ''मैं सभी नियंत्रण क्षेत्रों में यात्रा करने के बावजूद स्वस्थ और सुरक्षित हूं। अपनी यात्रा के दौरान, मैं हमेशा गेस्ट हाउस पसंद करता हूं और अनावश्यक संपर्कों से बचता हूं।''

इन शहरों में से प्रत्येक में, रोहन उन क्षेत्रों में रहने वाले अपने दोस्तों और रिश्तेदारों से संपर्क करते थे और अच्छी गुणवत्ता वाले और उचित मूल्य वाले रेस्तरां और होटलों से गरीबों को खिलाने के लिए कहकर खाने के पैकेट खरीदते थे। रोहन को अपने आसपास के लोगों का बहुत समर्थन मिला। वास्तव में, उन्होंने विभिन्न संगठनों से दान भी प्राप्त किया। हालाँकि, उन्हें किसी भी सरकारी निकाय से कोई प्रायोजन या अनुदान नहीं मिला है और उनका कहना है कि वह उनके समर्थन में तत्पर हैं।

चुनौतियां और आगे बढ़ने का रास्ता

रोहन और उनकी टीम के लिए, सीमित फंड ने हमेशा एक चुनौती पेश की। वास्तव में, कई जगह ऐसी थीं, जहां उन्हें धन की कमी के कारण अपनी फीडिंग पहल को सीमित करना पड़ा।

रोहन ने कहा, ''इसने मुझे वास्तव में परेशान कर दिया है, और मैं चाहता हूं कि मुझे कुछ संगठन या सरकारी निकायों से समर्थन मिल सके ताकि हम ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच सकें।'' हालाँकि, यह उनके हौसले को कम नहीं कर सकता। वह इस अभियान को जारी रखने की योजना बना रहे हैं क्योंकि यह समय की आवश्यकता है।

रोहन कहते हैं, ''मेरा मिशन जितना हो सके उतने लोगों को खाना खिलाना है।''

साभार : https://yourstory.com/hindi/

केवल उँगली नहीं, मज़दूरों की मदद की ज़िम्मेदारी भी उठा रहे हैं ये पत्रकार

■ ईश्वरी शुक्ला

“

अपनी ख़बरों से इतर, मजदूरों की राशन व स्वास्थ्य जैसी ज़रूरतों के लिए मदद कर रहे हैं ये पत्रकार.

पूरा विश्व कोरोना वायरस के कहर से जूझ रहा है। अब तक दुनियाभर में इसने करीब 200 देशों के लगभग 60 लाख लोगों को अपनी चपेट में ले लिया है। भारत में कोरोना की रफ्तार रिकॉर्ड तोड़ स्पीड से आगे बढ़ी जा रही है। तमाम छोटे-बड़े शहरों से मेहनतकश मजदूरों का पलायन देश के लिए एक दोहरी विपदा है। अपने घरों की ओर लौटते ये मजदूर कभी सड़क हादसों का शिकार बन रहे हैं तो कभी भूख और प्यास की चपेट में आ रहे हैं। ये हम सब के लिए दुखद है लेकिन वो कहते हैं ना किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है, अँधेरी रात पर दीपक जलाना कब मना है।

‘हम अपने स्तर पर कैसे जरूरतमंदों तक मदद का हाथ पहुँचा सकते हैं या एक बेहतर भारत बना सकते हैं?’ ये सवाल हम आख़िरकार कितनी बार खुद से पूछते हैं? ऐसे में हमारे बीच कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने सामाजिक दायित्व को समझते हैं और उसे बखूबी पूरा करते हैं।

आज जहाँ भारत में पत्रकारिता पर कई बार सवाल उठाये जा चुके हैं वहीं हमारे बीच कुछ ऐसे पत्रकार भी मौजूद हैं जो अपने पेशे के साथ ईमानदार रहते हुए लोगों की मदद के लिए भी आगे आते हैं। इनकी जिम्मेदारी बस खबरें बनाकर पूरी नहीं होती, बल्कि अगर उस खबर में कहीं कोई पक्ष अन्याय से जूझ रहा है या उसे मदद की जरुरत है तो उसके लिए, ये जरुरी कदमों का उठाया जाना भी सुनिश्चित करते हैं। लॉकडाउन के बीच जब मजदूर वर्ग राशन, स्वास्थ्य या दूसरी अहम जरूरतों से जूझ रहा है तब इन पत्रकारों का समूह लोगों की मदद के लिए आगे आ रहा है। ये पत्रकार जरूरतमंदों के लिए भारत के कई राज्यों तक मदद पहुंचा रहे हैं। कुछ नाम जो इनमें शामिल हैं— दया सागर (गाँव कनेक्शन), आनंद दत्ता (फ्रीलांसर : द प्रिंट, न्यूज क्लिक, डाउन टू अर्थ, एनबीटी), राहुल पांडेय (राज्यसभा टीवी) और निखिल साहू (नवभारत टाइम्स)।

सच को दिखाना है, गलत को सुधारना है

राजस्थान, झारखंड, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में मजदूर और गरीब वर्ग के लिए गाँव कनेक्शन के पत्रकार दया सागर, समय पर जरुरी राशन, उपचार व आर्थिक मदद उपलब्ध करा रहे हैं।

दया सागर बताते हैं, ऐसे हालातों में जब अपनी और दूसरों की सुरक्षा के लिए घर में रहना ही सही कदम है तब सोशल मीडिया एक जरिया है इन हालातों से लड़ने का और जीतने का।

दया सागर अपने राज्य में रह कर भी समन्वय से दूसरे राज्यों तक मदद पहुंचाते हैं। जिस भी जानने वाले की जानकारी में कोई पुलिस अधिकारी या एनजीओ होता है वह उसके माध्यम से जरूरतमंदों तक बुनियादी सुविधाएं पहुंचाते हैं।

उन्होंने बताया, अभी हाल ही में सूरत में फंसे एक

बीस वर्षीय मजदूर को अपने घर लौटने के लिए आर्थिक मदद की जरुरत थी। घर लौट चुका वो मजदूर अब अपने परिवार के साथ है और सुरक्षित है। अगर हम पत्रकार हैं तो हमें सच को ना ही सिर्फ दिखाना है बल्कि अगर कुछ गलत है तो उसे सुधारना भी है।

राज्यसभा टीवी से जुड़े पत्रकार, राहुल पांडेय के पास जब किन्हीं जरूरतमंद लोगों की खबर पहुंचती है, तो वह सबसे पहले अपने स्थानीय रिपोर्टरों के माध्यम से खबर को पुख्ता करने के बाद, वहां प्रशासन से बातचीत कर पीड़ित परिवारों तक राहत पहुंचाने के लिए जरुरी कदमों का उठाया जाना सुनिश्चित करते हैं। वहीं अगर लॉकडाउन में मजदूर परिवार में किसी की मृत्यु हो गई हो, तो उसे श्रम विभाग से भुगतान दिलाने की कोशिश रहती है। बिहार जिले में गोपालगंज के एक दलित परिवार तक 60-70 हजार रुपयों की सहयोग राशि पहुंचाई गई। परिवार के मुखिया गाजियाबाद में एक ट्रक ड्राइवर थे, जिनकी लॉकडाउन में मृत्यु हो गई थी। 32 वर्षीय मृत ड्राइवर पर अपनी तीन छोटी बच्चियों और बूढ़े पिता की जिम्मेदारी थी। राहुल का मानना है हम घर बैठे-बैठे भी अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभा सकते हैं। सोशल मीडिया पर जरूरतमंदों से जुड़े वो पोस्ट जो विश्वसनीय और पुख्ता हों, वहां हम अपनी थोड़ी सी भी धनराशि देकर उनकी मदद कर सकते हैं। हमें अपने पोस्ट के माध्यम से एक अमरीकी व्यक्ति से 25000 रुपयों की मदद भी मिली है। हमारी आज दी हुई आर्थिक मदद से कल किसी के घर का चूल्हा जल सकता है। सिर्फ शिकायत करने से समस्या नहीं सुलझती, हमें उसके हल के लिए प्रयास भी करने पड़ते हैं।

कई राज्यों तक पहुंचे मदद के हाथ

फ्रीलान्स पत्रकार, आनंद दत्त बताते हैं कई बार हमने ट्वीट के माध्यम से भी लोगों तक मदद पहुंचाई है। तमिलनाडु, तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और झारखंड तक राशन व्यवस्था या आर्थिक मदद दी गई है। नोएडा में झारखंड के करीब 50 लोग फंसे हुए हैं। ट्विटर पर प्रशासनिक अधिकारियों को टैग करने पर कई बार मदद समय पर तो कभी देर से भी मिलती है। लद्दाख में कई पहाड़ी आदिवासी फंसे हुए हैं जिसके लिए हमने झारखंड सरकार से बात की है। आनंद मानते हैं सरकार को पत्रकारों की, लॉकडाउन में पीड़ित लोगों से जुड़ी खबरों पर समय रहते जरुरी कदम उठाना चाहिए।

पत्रकार निखिल साहू, नवभारत टाइम्स से जुड़े हुए हैं। छत्तीसगढ़, दिल्ली और गाजियाबाद में अपने फ्रेंड सर्किल की मदद से ये जरूरी स्वास्थ्य और राशन सुविधा उपलब्ध करा चुके हैं। मेरठ में लॉकडाउन के बीच एक गर्भवती महिला की डिलीवरी के लिए अस्पताल का मिलना मुश्किल हो गया था। खबर मिलने पर निखिल अपने साथियों के साथ महिला की मदद कर पाए। हालांकि लॉकडाउन के बीच एक ऐसी घटना भी सामने आई जो जांच पड़ताल के बाद झूठी निकली इसलिए सतर्क रहते हुई ये भी जरुरी है कि सूचना को पुख्ता भी किया जाए।

मदद करने के लिए संसाधनों से पहले इच्छाशक्ति की जरुरत होती है

छत्तीसगढ़ से द बेटर इंडिया के संवाददाता जिनेन्द्र पारख ने अपने अनुभव से सीखा है कि मदद करने के लिए संसाधनों से पहले इच्छाशक्ति की जरुरत होती है। जिनेन्द्र को जब पता चला कि जालना, महाराष्ट्र से साइकिल चलाकर आ रहे कुछ मजदूरों का समूह अपने घर गंजाम, ओडिशा तक जाना चाहता है और इसके लिए वो हर रात लगभग 70-80 किलोमीटर साइकिल चलाते हैं और दिन में सड़क के किनारे सो जाते हैं। उन्हें कभी खाना मिलता है, तो कभी नहीं मिलता। जिनेन्द्र ने अपने एक परिचित की मदद से समर्थ ट्रस्ट और वी द पीपल संस्था द्वारा इनके लिए गाड़ी की व्यवस्था करवाई, जिससे इन मजदूरों का घर पहुंचने का लंबा सफर आसानी से खत्म हो सके।

देश के निर्माण में एक मजदूर बहुमूल्य भूमिका निभाता है। डर और आशंकाओं की इस स्थिति में हम घर पर बैठे-बैठे जरुरी सुविधाओं का लाभ तो उठा रहे हैं लेकिन एक बार उनका सोचिये जो शहर में भूख से बेहाल हैं, पैसों की तंगी झेल रहे हैं और इस अंधेरे में उन्हें दिख रहा है बस अपने गांव का एक घर। यही समय है इन पत्रकारों की तरह अपने स्तर पर अपना सामाजिक दायित्व निभाने का। आखिर अब नहीं तो कब!

साभार : https://hindi.thebetterindia.com/

मिलिए हियर आई एम वॉलंटियर्स से जो कोविड-19 से मरने वालों का अंतिम संस्कार कर रहे हैं

■ रेखा बालकृष्णन

हम सभी इस बेहद कठिन समय से गुजर रहे हैं। ये ऐसा समय है जो किसी को भी निराशा, शोक या बेबस लाचारी में तोड़ सकता है। लेकिन हियर आई एम के वॉलंटियर्स, सहानुभूति, समर्पण और साहस के साथ, कोविड-19 से मरने वाले लोगों का अंतिम संस्कार करने के लिए कब्रिस्तानों और श्मशान घाटों का दौरा कर रहे हैं। 70 से अधिक वॉलंटियर्स हियर आई एम स्कवॉड का हिस्सा हैं।

एस्टर बेंगलुरु में Here I Am Last Rites and Funeral Squad टीम के साथ एक वॉलंटियर हैं। जिसका मिशन धर्म की परवाह किए बिना उन लोगों के अंतिम संस्कार में मदद करना है, जिनकी कोविड-19 से मृत्यु हो गई है। एस्टर कब्रिस्तानों में उन लोगों के परिवारों की मदद करने के लिए मौजूद रहती हैं, जिन्होंने बेंगलुरु में कोविड-19 के कारण दम तोड़ दिया। वे बताती हैं, 'मैंने एक ऐसी नवविवाहित महिला को देखा, जो अपने पति के अंतिम संस्कार के लिए आई थी। वे सात साल से रिलेशनशिप में थे। एक अन्य घटना में, माता-पिता ने अपने बेटे और बेटी दोनों को दफनाया और रो रहे थे, पूछ रहे थे कि उन्हें अब किसके लिए जिंदा रहना चाहिए।'

एक अन्य वॉलंटियर-कोऑर्डिनेटर और शहर के एक कॉलेज में कानून के अंतिम वर्ष की छात्रा, अक्षया कहती हैं, 'एक सम्मानजनक जीवन जीना बुनियादी मानव अधिकार है, और ठीक इसी तरह एक सम्मानजनक मौत भी है।'

एस्टर और अक्षया के साथ 70 से अधिक अन्य स्वयंसेवक, युवा और बूढ़े, पुरुष, महिलाएं, लड़के और लड़कियां जुड़े हुए हैं। उनमें से कई छात्र हैं जो इस उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अक्षया कहती हैं कि बहुत विचार-विमर्श के बाद इस पहल का नाम 'हियर आई एम' रखा गया। वे कहते हैं, 'हमारा मानना है कि मदद के लिए पुकार भगवान की पुकार के समान है, और हम सभी को यह जवाब देने में सक्षम होना चाहिए कि, 'मैं यहाँ हूँ।'

द हियर आई एम स्क्वाड बेंगलुरु के आर्च डायसीज की एक पहल है, जिसका नेतृत्व फादर संतोष रॉयन और फादर राजेश ने बेंगलुरु के सभी हिस्सों से समर्पित स्वयंसेवकों की एक टीम के साथ किया है।

पहल पिछले साल शुरू हुई जब मामलों की संख्या चरम पर पहुंच गई। अक्षया ने बताया, 'चर्च में हमारी एक बैठक हुई और एक समिति बनाने का निर्णय लिया गया। मुझे मदद करने के लिए कहा गया था। मैं बहुत खुश थी क्योंकि मैं घर पर बैठी थी, ऑनलाइन कक्षाओं में भाग ले रही थी और आगे के रास्ते को लेकर उलझन में थी।'

एक गूगल फॉर्म जारी किया गया था, जिसका इस्तेमाल स्वयंसेवक साइन अप करने के लिए कर सकते थे। विभिन्न आयु समूहों के आधार पर, विभिन्न कार्यों के लिए स्वयंसेवकों को अलग किया गया। मदद मांगने के लिए आने वाले फोन कॉल्स उठाने के लिए बेंगलुरु पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के लिए चार हेल्पलाइन नंबर हैं।

कागजी काम (आधार कार्ड विवरण, मृत्यु प्रमाण पत्र, कोविड पॉजिटिव प्रमाणपत्र) हो जाने के बाद, एक समन्वयक के रूप में, अक्षया परिवार के सदस्य को यह पूछने के लिए बुलाती हैं कि उन्हें क्या चाहिए। जो ताबूत नहीं खरीद सकते, उन्हें दिया जाता है।

प्रारंभ में, मर्सी एंजल्स के सहयोग से शवों को जलाने/दफनाने के स्थलों तक मुफ्त में ले जाया जाता था, लेकिन अब

यह समूह स्थानीय उद्यम वीटीटी द्वारा दान की गई एम्बुलेंस का उपयोग करता है।

मृतक के परिवार के सदस्यों की मदद के लिए अंतिम संस्कार स्थलों पर सुबह से रात तक स्वयंसेवक भी मौजूद रहते हैं। मामलों की संख्या कम होने के बाद, हियर आई एम पहल ने जनवरी 2021 में अपनी गतिविधियों को रोकने का फैसला किया। लेकिन अक्षया कहती हैं कि जैसे ही दूसरी लहर भारत में आई, स्वयंसेवक वापस मैदान पर थे, यहां तक कि बिना किसी के कहे। वॉलंटियर्स विभिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं—छात्र, आईटी कर्मचारी, लेक्चरर्स और सभी धर्मों से हैं। वे अपेक्षित कोविड प्रोटोकॉल का पालन करते हैं और मास्क, दस्ताने, सैनिटाइजर और पीपीई किट से लैस हैं। वे यह सब बिना किसी झिझक के करते हैं, हालांकि शुरू में कुछ डर था। एस्टर कहती हैं, 'बॉडी को एम्बुलेंस में रखने से लेकर उसे ताबूत में ले जाने, गड्ढे तक ले जाने, ताबूत को नीचे करने, और कभी-कभी गड्ढे को मिट्टी से भरने तक, हम हर जगह मौजूद रहते हैं। जैसे-जैसे हमने अधिक मामलों को देखा, वैसे-वैसे हमारा डर खो गया।'

हियर आई एम स्क्वाड ने 1 अप्रैल से 15 मई के बीच 617 शवों को दफनाने में मदद की है। ऐसे कार्यों को प्रतिदिन करना काफी भारी हो सकता है, और वॉलंटियर्स इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से गठित एक काउंसलिंग टीम से कंसल्ट कर सकते हैं। अब तक, उनका कोई भी वॉलंटियर्स इस बीमारी से प्रभावित नहीं हुआ है।

साभार : https://yourstory.com/hindi/

पत्नी के जेवर बेचकर अपने ऑटो को बनाया एंबुलेंस

मन में अगर किसी की सेवा करने का इच्छा हो तो संसाधन कभी रुकावट नहीं बनते। ऐसी ही कहानी है भोपाल के जावेद खान की। इस शख्स ने कोविड मरीजों की मदद के लिए कुछ ऐसा किया, जिसकी वजह से उनकी खूब तारीफ हो रही है। वे अपने थ्री व्हीलर को एक एंबुलेंस में तब्दील कर लोगों को मदद पहुंचा रहे हैं वो भी नि:शुल्क। खान का ऑटो ऑक्सीजन सिलिंडर, पीपीई किट, सैनिटाइजर और ऑक्सीमीटर जैसे जरूरी उपकरणों से लैस है।

खान ने बताया कि सोशल मीडिया और न्यूज चैनलों में एंबुलेंस की कमी की वजह से लोगों को मरीजों को कंधों और ठेले में ले जाने वाली हृदय विदारक खबरों को देखकर उनके मन में लोगों की मदद करने का विचार आया। उनकी इस पहल में उन्हें पत्नी का साथ मिला। ऑटो में ऑक्सीजन सिलिंडर लगाने के लिए पत्नी की सोने की चेन 5000 रुपये में बेच दी।

उन्होंने बताया कि वे इसके लिए कोई पैसे नहीं लेते। लोगों को निर्बाध मदद मिलती रहे इसके लिए वह चार से पांच घंटे लाइन में खड़े रहकर ऑक्सीजन सिलिंडर भरवाते हैं। जावेद ने सोशल मीडिया में अपना नंबर 7999909494 साझा किया है ताकि वह ज्यादा से ज्यादा जरूरतमंदों तक पहुंच सके।

सड़कों पर भूखों के मसीहा सरदार जी

कोरोना की दूसरी लहर में फिर से कई जगह लॉकडाउन होने से शहरों में रहने वाले बेघर और गरीब लोगों को खाना नसीब नहीं हो रहा है। ऐसे में कई गुमनाम हीरो इन तक रोज निवाला पहुंचा रहे हैं।

नागपुर में इन दिनों एक 'सरदार जी' यह भूखों के अन्नदाता के रूप में मशहूर हो गए हैं। रोज अपने स्कूटर पर शहरभर में बेघर लोगों को खाना देकर बड़ी खामोशी से अपने घर लौट जाते हैं। एक ओर कई लोग छोटी-छोटी चीजों के दान में दिखावा करते हैं, वहीं सरदार जी बिना प्रचार के लोगों की सेवा में जुटे हैं। जब लोग इनसे फोटो खिंचवाने को कहते हैं तो अनिच्छा जाहिर कर देते हैं। कहते हैं, मुझे दिखने का कोई शौक नहीं बल्कि भूखों का पेट भरना ही सबसे बड़ा लक्ष्य है।

हाल ही में एक ट्विटर यूजर ने अपने अकाउंट पर इस मसीहा की कहानी साझा की तो लोग उन्हें सलाम करने लगे। यूजर ने लिखा कि मैं कई दिनों से सरदार जी को सेवा करते हुए देख रहा था। मैंने उनसे फोटो खिंचवाने की गुजारिश की पहले संकोच करने लगे फिर राजी हो गए। जब लोगों तक उनकी कहानी पहुंची तो उन्होंने इस अन्नदाता को निस्वार्थ सच्ची सेवा करने वाला हीरो करार दिया।

बाइक को बना देते हैं ऑक्सीजन वाला एम्बुलेंस नि:शुल्क करते हैं मदद

■ निशा डागर

मध्य-प्रदेश में धार के रहने वाले इंजीनियर अज़ीज़ खान ने एक दिन सोशल मीडिया पर देखा कि एक बुजुर्ग व्यक्ति अपनी पत्नी के शव को साइकिल पर लेकर शमशान जा रहा था, क्योंकि उन्हें कोई एम्बुलेंस या अन्य मदद नहीं मिल पायी थी। इस खबर ने उन्हें बहुत विचलित कर दिया और उन्होंने सोचा कि मैं अपनी तरफ से क्या कर सकता हूँ और फिर बाइक से चलने वाली एम्बुलेंस बनाने का ख्याल उनके मन में आया!

46 वर्षीय अज़ीज़ खान मैकेनिकल इंजीनियर हैं और एक पॉलिटेक्निक कॉलेज में बतौर शिक्षक भी काम कर चुके हैं। फिलहाल, उनकी अपनी फैक्ट्री है, जहाँ वह किसानों के लिए कृषि से जुड़े यंत्र बनाते हैं। अज़ीज़ खान ने बताया, 'मैं अपने ज्ञान और जानकारी को लोगों की मदद के लिए इस्तेमाल करना चाहता था। इसलिए शिक्षक की नौकरी छोड़कर फैक्ट्री शुरू की, ताकि किसानों के लिए उपकरण बना सकूं। मैं अलग-अलग तरह के कृषि यंत्रों पर काम करता हूँ, लेकिन कोरोना महामारी के दौरान मैंने अपने हुनर को आम लोगों और कोविड-19 से जूझते मरीजों के लिए उपयोग में लेने की सोची।'

पुरानी चीजों को इस्तेमाल कर बनाई बाइक एम्बुलेंस

अज़ीज़ खान बताते हैं कि सबसे पहले उन्होंने एम्बुलेंस के बारे में कुछ जानकारी जुटाई। जैसे उन्होंने देखा कि एक एम्बुलेंस में बेसिक चीज क्या है और इसके बाद, उन्होंने पता लगाया कि एक बाइक से चलने वाली एम्बुलेंस कैसे बना सकते हैं।

वह कहते हैं, पहले मैंने एम्बुलेंस का एक डिजाइन तैयार किया। इसके बाद मोटर व्हीकल एक्ट को समझा। एम्बुलेंस बनाने के साथ-साथ इसे लोगों की मदद के लिए पहुँचाना भी जरुरी था। इसलिए मैं नहीं चाहता था कि कल को किसी भी वजह से यह बाइक एम्बुलेंस लोगों की मदद ही न कर पाए। इसलिए मैंने सभी कानूनों को ध्यान में रखकर काम किया।

उन्होंने इस बाइक एम्बुलेंस को बनाने के लिए पुरानी साइकिल के पहिए, अस्पतालों में इस्तेमाल होने वाले पुराने बेड, स्प्रिंगअप्स और शॉकअप्स जैसे दूसरे पुराने कल-पुर्जे भी इस्तेमाल किए। उन्होंने इन सब चीजों को इस्तेमाल करके एक ऐसा स्ट्रक्चर तैयार किया, जिसे किसी भी बाइक में लगाकर इस्तेमाल किया जा सकता है। उनकी बनाई इस एम्बुलेंस में एक समय में एक मरीज आसानी से लेटकर अस्पताल तक पहुँच सकता है। इसमें कुछ बेसिक दवाई, IV ड्रिप और ऑक्सीजन सिलिंडर की भी सुविधा है। बाइक एम्बुलेंस में लगा ऑक्सीजन सिलिंडर तीन घंटे तक काम करता है। उन्होंने बताया कि एक बाइक एम्बुलेंस तैयार करने में लगभग 40 हजार रुपए की लागत आई है। हालांकि, अगर ज्यादा संख्या में इन एम्बुलेंस को बनाया जाए, तो यह लागत कम की जा सकती है। अज़ीज़ ने अब तक पाँच एम्बुलेंस बनाई हैं, जिन्हें किसी भी बाइक के पीछे लगाकर इस्तेमाल किया जा सकता है और कोई भी मुफ्त में उपयोग कर सकता है।

उन्होंने अपनी फैक्ट्री के बाहर ही एक बड़ा-सा बोर्ड लगाकर सभी एम्बुलेंस को खड़ा किया हुआ है। जिसको भी जरूरत हो, वह अपनी बाइक लेकर एम्बुलेंस ले जा सकता है। उन्हें बस डॉक्टर का प्रिस्क्रिप्शन दिखाना होगा। एम्बुलेंस इस्तेमाल करने का कोई किराया नहीं है। हालांकि, अगर कोई इस्तेमाल के बाद ऑक्सीजन सिलिंडर को फिर से भरवा सकता है, तो अच्छा है। लेकिन अगर कोई परिवार ऑक्सीजन भी नहीं भरवा सकता, तो भी कोई समस्या नहीं है। क्योंकि बहुत से लोग हैं, जिनके पास इतने पैसे नहीं हैं कि वे एम्बुलेंस का किराया या ऑक्सीजन के पैसे दे पाएं।

जिला प्रशासन ने की तारीफ

कोविड-19 के मरीजों के अलावा, ये एम्बुलेंस अन्य लोगों

के भी काम आ रही हैं। 32 वर्षीय सतीश पाल बताते हैं, 'कुछ दिन पहले, मेरी मम्मी घर में फिसलकर गिर गयी और उनके पैर में काफी ज्यादा चोट आयी। मैंने काफी कोशिश की लेकिन एम्बुलेंस नहीं मिल पा रहा था। मेरे पास भी सिर्फ बाइक ही है और मम्मी की हालत ऐसी नहीं थी कि उन्हें बाइक पर ले जाया जाए। इसलिए मैंने अज़ीज़ जी से संपर्क किया।'

सतीश ने दो बार बाइक एम्बुलेंस को उपयोग में लिया है और उन्होंने कहा, पहली बार जब मैंने उनसे एम्बुलेंस लिया, तो थोड़ी हिचक थी कि यह कैसे इस्तेमाल होगी, लेकिन यह बहुत ही फायदेमंद साबित हुई। अज़ीज़ जी ने बहुत ही अच्छा काम किया है, क्योंकि मुश्किल समय में उनकी यह बाइक एम्बुलेंस बहुत कारगर है।

अज़ीज़ के इस आविष्कार को न सिर्फ आम नागरिकों से, बल्कि जिला स्तर के अधिकारियों से भी सराहना मिल रही हैं। वह बताते हैं, 'मैंने जब पहली एम्बुलेंस बनाई तो पास के एक गाँव से किसी मरीज को अस्पताल पहुँचाने के लिए कोई इसे लेकर गया था। उस समय रास्ते में किसी ने इसका वीडियो बना लिया और धीरे-धीरे इसके बारे में सोशल मीडिया पर लोग लिखने लगे। बहुत से लोगों ने मुझसे फोन करके मदद मांगी। आम नागरिकों के अलावा, हमारे जिला कलेक्टर ने भी फोन करके इसके बारे में जानकारी ली।'

उन्होंने न सिर्फ उनके काम की तारीफ की, बल्कि अज़ीज़ को जिले के लिए बाइक एम्बुलेंस बनाने का ऑर्डर भी दिया। उन्होंने कहा, 'ग्रामीण इलाकों के लिए खासतौर पर इस तरह की सुविधाओं की जरूरत है। धार जिले में बहुत से ऐसे गाँव हैं, जिनके लिए यह बाइक एम्बुलेंस ज्यादा कारगर साबित हो सकती है। चार पहिए वाली एम्बुलेंस से आप साथ में दो-तीन मरीज ला सकते हैं, लेकिन आने-जाने में बाइक एम्बुलेंस से ज्यादा आसानी रहती है।'

अज़ीज़ की कोशिश एम्बुलेंस को थोड़ा और एडवांस स्तर पर बनाने की है। वह कहते हैं, 'जिला प्रशासन ज्यादा से ज्यादा लोगों तक मदद पहुँचाने में जुटा है। जब हमारे अधिकारी दिन-रात मेहनत कर रहे हैं, तो हमारा भी कर्तव्य है कि हम लोगों के लिए कुछ करें। मैंने जो किया वह कोई बड़ा काम नहीं है, क्योंकि कोई भी यह कर सकता है। इसलिए मैं लोगों से सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि जितना हो सके, इस मुश्किल घड़ी में लोगों की मदद करने की कोशिश करें।'

साभार : https://hindi.thebetterindia.com/

कोविड-19 मरीजों को अस्पताल पहुंच रोज मुफ्त में खाना खिलाती है यह लड़की

कोरोना वायरस के मामलों में बढ़ोतरी के बीच महाराष्ट्र के एक गांव की युवती कोविड-19 के मरीजों और उनके परिवारों को घर में बनाया हुआ खाना निशुल्क आपूर्ति कर रही है। मनीषा बालाजी वाघमारे कस्बे तडवाले गांव से हर दिन 32 किलोमीटर की यात्रा करती हैं। वह अपनी स्कूटी पर भोजन के करीब 100 पैकेट लेकर उन्हें उस्मानाबाद जिला सरकारी अस्पताल में मरीजों और उनके रिश्तेदारों को पहुंचाती हैं। वाघमारे ने बताया कि कोविड-19 के मरीजों और उनके परिवार वालों के अस्पताल में होने के कारण वे खाना नहीं तैयार कर पाते हैं। इसलिए उन्होंने और उनके अभिभावकों ने ऐसे लोगों को निशुल्क भोजन मुहैया कराने का फैसला किया। वाघमारे ने कहा, 'संकट के इस वक्त मरीजों और उनके परिजनों को अच्छे भोजन के साथ मनोबल ऊंचा बनाए रखने की भी जरूरत है।'

वाघमारे 21-22 साल की है। वह पुणे में महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग (एमपीएससी) परीक्षा की तैयारी कर रही थी लेकिन राज्य में पाबंदी लगाए जाने के कारण वह अपने पैतृक स्थल पर लौट आयी। किस चीज ने उन्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित किया, यह पूछे जाने पर वाघमारे ने कहा कि एक बार उनके दादा बीमार पड़ गए थे और उन्हें उस्मानाबाद में एक अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन उन्हें वहां भोजन नहीं मिला। उन्होंने कहा, 'हम उन्हें खाना भी मुहैया नहीं करा पा रहे थे। इस घटना ने मुझे और मेरे परिवार को जरूरतमंद की मदद करने को प्रेरित किया।''

सुंदरलाल बहुगुणा अब गए हैं, लेकिन अपने नायकों को बरतने का हमारा विवेक पहले ही जा चुका है

■ **विकास बहुगुणा**

"

नहीं तो यह कैसे हो सकता है कि कोई आपको आपके वजूद के संकट के लिए चेताए और आप उस पर दिखावे की हरकत भी न करें...

ज्यादातर लोगों की तरह मेरे लिए भी चिपको आंदोलन और सुंदरलाल बहुगुणा पांचवीं-छठी के दिनों में सामान्य ज्ञान का विषय ही थे। मैं उत्तराखंड का ही था, वे बहुगुणा थे और मेरे दादाजी का नाम भी सुंदरलाल था, इस बात ने मेरे मन में उनके लिए एक स्वाभाविक आकर्षण का भाव पैदा कर दिया था। हर गर्मियों की छुट्टियों में मेरा अपने गांव जाना और पुरानी टिहरी के पुल से गुजरना होता। ऐसी ही एक यात्रा के दौरान मेरी सीट के पास बैठे एक सज्जन किसी परिचित को बाहर इशारा करते हुए बोले, 'वो है साहब सुंदरलाल बहुगुणा की कुटिया।'

मैंने भी बस की खिड़की से बाहर देखा। जो मुझे नजर

आया वह टिन और लकड़ी के जुगाड़ से बना एक कामचलाऊ इंतजाम सा था। यही सुंदरलाल बहुगुणा की कुटिया थी जिसके बाहर अनशन स्थल या ऐसा ही कुछ लिखा हुआ एक बोर्ड लगा था। इसके ठीक नीचे पूरे वेग से बहती हुई भागीरथी थी। कुटिया से थोड़ा आगे वह सुरंग तब खोदी ही जा रही थी जिसमें नदी को डाला जाना था और उसी स्थान पर भारत के सबसे बड़े बांध की दीवार उठाई जानी थी। तब से हर बार टिहरी के जर्जर पुल से गुजरते हुए बस की खिड़की से जिज्ञासा के साथ उस कुटिया को देखना एक नियमित काम हो गया।

वाट्सएप उन दिनों नहीं था, लेकिन अफवाहबाज गिरोह आज की भांति ही खूब सक्रिय थे। समय के साथ मेरा भी इन गिरोहों द्वारा फैलाई गई बातों से खूब परिचय हुआ। मसलन 'आंदोलन-वांदोलन सब दिखावा है, सुंदरलाल बहुगुणा को जब भी पैसा चाहिए होता है वो अनशन पर बैठ जाता है, इसके बच्चे विदेश के महंगे स्कूलों में पढ़े हैं', वगैरह वगैरह। सूचनाएं उतनी ही विश्वसनीय होती हैं जितना उनका स्रोत, इस बात की उन दिनों समझ नहीं थी। सो मैं भी इन बातों पर थोड़ा-बहुत यकीन करने लगा था।

खैर, वक्त बीतता गया। ग्रेजुएशन की पढ़ाई के लिए मैं देहरादून आ गया। इसी दौरान एक बार बस से घर जा रहा था। ऋषिकेश में बस रुकी। कुछ सवारियां उतरीं और कुछ चढ़ीं। इनमें से एक बुजुर्ग भी थे जो मेरी बगल की सीट पर बैठ गए। उनका विन्यास ध्यान खींचने वाला था। धोती-कुर्ता, लंबी दाढ़ी, झोला और सर पर बांधा हुआ एक साफा। सब सफेद। ये वही हैं क्या! यह सोच ही रहा था कि बस कंडक्टर ने सारा संदेह खत्म कर दिया। विनम्र मुस्कान के साथ वह झुका और बोला, नमस्कार बहुगुणा जी।

बहुगुणा जी ने अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया और किराए के पैसे बढ़ा दिए। कंडक्टर ने कहा, 'रण द्या न, क्की बात नी' (रहने दीजिए न, कोई बात नहीं।)। वे बोले, 'न भाई' और इसके साथ ही पैसे उसके हाथ में पकड़ा दिए।

इतनी मशहूर हस्ती से क्या बात की जाए, इस झिझक के मारे उस एक घंटे की यात्रा में मैं चुप ही रहा। उन्होंने भी घर के किसी बुजुर्ग सी एक निगाह मेरे ऊपर सिर्फ इस तरह से डाली मानो देखना चाहते हों कि उनकी वजह से कहीं मुझे बैठने में कोई तकलीफ तो नहीं हो रही है। इसके अलावा उस सफर में ऐसा कुछ भी नहीं था जो मेरी किसी भी पिछली बस यात्रा से जरा भी अलग हो। बाद में जब सोचा तो लगा कि उस सफर की असाधारणता उसके साधारण होने में ही थी।

उस दिन सुंदरलाल बहुगुणा से मेरा एक नया परिचय हुआ। ये वह सुंदरलाल बहुगुणा नहीं थे जिन्होंने टिहरी बांध विरोधी आंदोलन से पैसा कूटा था और जिनके बच्चे विदेशों में पढ़े थे। जब उनके बारे में और जाना तो यह भी जाना कि सुंदरलाल बहुगुणा वह शख्स थे जिन्होंने बस की टिकट की तरह प्रकृति से भी मुफ्त में कुछ नहीं लिया। उन्होंने जिससे जितना लिया शायद उससे ज्यादा लौटाया था। उन्होंने पहाड़ों, जंगलों और नदियों को पैदल नापा था और बताया था कि इनसे उतना ही लिया जाए जितनी जरूरत है, तभी धरती जीने लायक बची रहेगी। यह अलग बात है कि हमने उनकी नहीं सुनी। केदारनाथ से ऋषिगंगा त्रासदी तक उत्तराखंड का मौजूदा हाल उसका प्रमाण है।

सुंदरलाल बहुगुणा भले ही अब गए हों, लेकिन अपने नायकों को बरतने का विवेक हमारे समाज से काफी पहले ही जा चुका है। नहीं तो यह कैसे हो सकता था कि कोई आपको आपके वजूद के संकट बारे में चेताए और आप उस पर पर्याप्त तो छोड़िये दिखावे की हरकत भी न करें। सुंदरलाल बहुगुणा कहते थे कि बांध रूपी जो यह राक्षस दिल्ली की सरकार बना रही है वह बनने के बाद भी बलियां लेता रहेगा। उनका मानना था कि बांध की झील के इर्द-गिर्द जो गांव बसे हैं, उनका भी भविष्य असुरक्षित है क्योंकि नीचे पानी और ऊपर भुरभुरी मिट्टी होगी तो उस मिट्टी से बनी ढलान का एक दिन दरकना तय है।

लेकिन उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती जैसी लगती थी। या फिर एक ऐसे व्यक्ति की आवाज जो अपने मतलब के लिए ऐसा कह रहा था। इसलिए न तो सरकार ने उनकी चेतावनी पर ध्यान दिया और न उन लोगों ने जिनके लिए वे लड़ रहे थे। और आज वही हो रहा है। झील से सटी ढलानें दरकने लगी हैं और इन पर बसे गांवों के लोग अपना वजूद बचाने की लड़ाई लड़ रहे हैं।

क्या आगे हालात बदलेंगे? इन दिनों सूचनाओं का जो सूरते-हाल है उसे देखकर फिलहाल तो ऐसी उम्मीद दूर की कौड़ी लगती है। मार्क ट्वेन सही कहते हैं—आपको खबर ही नहीं कि आपके साथ क्या हो रहा है। बल्कि आप तो यही नहीं जानते कि आप बेखबर हैं।

साभार : https://www.satyagrah.com/

लाल बहादुर वर्मा : 'जन साहित्य और जन इतिहास का सबसे बड़ा बाबू' और 'मास्टर'

■ शेखर पाठक

"

लाल बहादुर वर्मा सत्य की समझ, अन्याय के विरोध और मानवीयता के समर्थन को जरूरी मानते थे लेकिन इस त्रिभुज के बीचोंबीच एक दिल का निशान भी था।

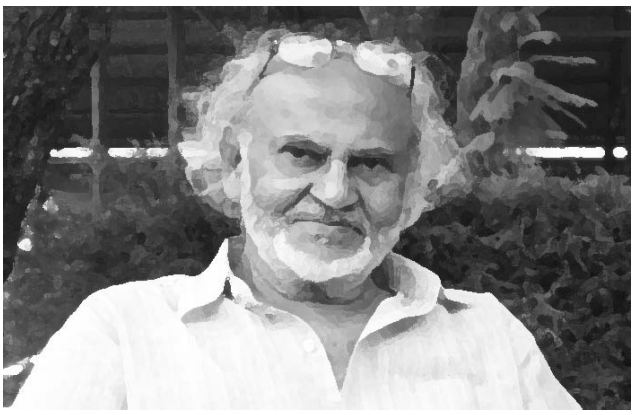

लाल बहादुर वर्मा (10 जनवरी 1938, गोरखपुर—16 मई 2021, देहरादून) को अगर एक शब्द में बयान करना हो तो मैं उन्हें मुस्कुराहट कहना चाहूंगा। यह उनकी सृजनशीलता थीं— अनेक प्रकार की और अनेक तरह से बोलती हुई। यह मुस्कुराहट मानवीय ऊष्मा से आगे समस्त जीव प्रजातियों की बुनियादी एकता पर भी नजर डालती थी। 84 साल की उम्र में भी वे पदार्थवादी थे, पर एक स्वाभाविक मासूमियत से भरे हुये।

पूर्वांचल के सामान्य परिवार का बच्चा, जो छात्र संघ का अध्यक्ष बना तो शिक्षक संध का भी। कर्मचारी भी उन्हें अपना नेता मानते रहे। लाल बहादुर वर्मा की मूल कामना थी कि सभी छात्र, शिक्षक और कर्मचारी लड़ाकू बनें ताकि जनता लड़ाकू बन सके। वे गोरखपुर, लखनऊ, तथा सारबॉन विश्वविद्यालय से पढ़े। सारबॉन में उन्हें सुप्रसिद्ध इतिहासकार-दार्शनिक रेमो आरों जैसे शिक्षक मिले, जिनके निर्देशन में उन्होंने 'इतिहास लेखन की समस्याओं' पर शोध किया। आरों के सम्पर्क और शिक्षण ने उन्हें इतिहास के विद्यार्थी की जिम्मेदारियों का भान कराया।

आरों ने उन्हें अपनी भाषा के इस्तेमाल का मर्म समझाया। यह किसी और भाषा का निषेध नहीं था। पेरिस के अकादमिक जीवन को छोड़कर वे देश लौटे। उन्होंने डाक्टरेट 'ऐंग्लो इण्डियन्स' (गोरखपुर विवि) पर अंग्रेजी में लिखी तो सारबोन की थीसिस फ्रान्सीसी में। लेकिन अपनी शेष सभी किताबें हिन्दी में लिखी। अंग्रेजी तथा फ्रान्सीसी से उन्होंने बहुत साहित्य हिन्दी में अनुवाद किया।

एक शिक्षक, शोध निर्देशक तथा प्रयोगशील पाठ्यक्रम निर्माता के रूप में उन्हें गोरखपुर, मणिपुर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के साथ अन्यत्र भी याद किया जाता रहेगा, जहां उन्होंने इतिहास दर्शन तथा स्थानीय या क्षेत्रीय इतिहास को पाठ्यक्रम में जुड़वाया।

उन्होंने सबसे पहले 'भंगिमा' जैसी पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। गोरखपुर तब सृजन केन्द्र बन रहा था। 'संचेतना' जैसा नाट्य और सांस्कृतिक संगठन बनाया। पत्रिकायें, नाटक, चित्र प्रदर्शनियां, संगोष्ठियां और तरह-तरह के संवाद। यात्रा फिर 'इतिहास बोध' की ओर आई, जो हाल तक प्रकाशित होती रही। इतिहास अध्ययन तथा इतिहास निर्माण के लिये पुस्तिकायें या पत्रक निकालते रहे। 'संधान' से भी वे जुड़े थे। प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, बाबा नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल या अदम गौंडवी के स्मृति समारोह करने की हिम्मत उनमें और उनके साथियों में थी। वे साहित्य, इतिहास और संघर्ष के बीच के पुल बने।

फिर उन्होंने सरल हिन्दी में मौलिक किताबें लिखने का सिलसिला चलाया। 'यूरोप का इतिहास', 'विश्व इतिहास की झलक', 'इतिहास: क्यों-क्या-कैसे', 'अधूरी क्रांतियों का इतिहास बोध', 'क्रांतियां तो होंगी ही', 'इतिहास के बारे में', 'कांग्रेस के सौ साल', 'अपने को गंभीरता से लें', 'भारत की जनकथा', 'मानव मुक्तिकथा' आदि अनेक किताबें लिखी। ये लोकप्रिय हुईं और अनेक संस्करणों में निकलीं। उनकी किताबें राहुल सांकृत्यायन की किताबों की याद इस अर्थ में दिलाती हैं कि वे जन जागरण का लक्ष्य लिये होती थीं।

उनकी तीन औपन्यासिक और दो आत्मकथात्मक किताबें खूब चर्चा में रहीं। 'उत्तर पूर्व', 'मई अड़सठ, पेरिस' और 'जिन्दगी ने एक दिन कहा' उनके तीन उपन्यास हैं। पहली रचना उनके मणिपुर के अनुभवों पर आधारित थी। दूसरी पेरिस के छात्र विद्रोह पर, जिसकी ऊर्जा और अनुगूंज को वे पेरिस प्रवास में सुनते और गुनते रहे थे। पेरिस की 1789, 1871 और 1968 की घटनायें उस शहर और देश की जीवन्तता और बेचैनी का संकेत देतीं थीं, जिन पर उन्होंने बड़ी अनुभव सम्पन्नता से लिखा। यह इतिहास को महसूस कर लिखने जैसा था। तीसरी रचना भोपाल गैस काण्ड पर थी।

उनकी आत्मकथा का पहला खण्ड है 'जीवन प्रवाह में बहते हुये' और दूसरा 'बुतपरस्ती मेरा इमान नहीं'। बहुत खुली है उनकी आत्मकथा। इसका ताल्लुक भी उनकी मुस्कुराहट यानी खुलेपन से है। दो खण्ड कम से कम 7-8 दशकों के बहुत से आयाम हमारे सामने रखते हैं।

इसके साथ उनका योगदान सचेष्ठ और सक्रिय अनुवादक के रूप में भी रहा। उन्होंने अनेक साहित्यिक और ऐतिहासिक किताबों का हिन्दी अनुवाद किया। उनमें ऐरिक हाब्सबाम, विक्टर ह्यूगो, जैक लंदन, आर्थर मारविक, हावर्ड फास्ट, हावर्ड जिन, बॉब डिलन तथा क्रिस हर्मन आदि की रचनायें थीं।

वे तरह-तरह के खनिजों से बने व्यक्ति थे। अपने होने की कुछ मिश्र धातुयें उन्होंने खुद बनाई थीं। जैसे प्रकृति प्रेम, पर्यावरण बेचैनी, उपभोग की अति की निरर्थकता उन्हें 'मठी मार्क्सवादियों' से अलग करती है। इसलिये उनकी मुख्य रुचि तमाम मुद्दों के लिये मुहिम, जन जागरण और जनान्दोलनों की तैयारी की रही। जन इतिहास की वकालत इसीलिये वे ताजिन्दगी करते रहे। सत्य को समझना और उसका साथ देना, अन्याय का विरोध करना, मानवीयता का पक्ष लेना वे जरूरी मानते थे। इस त्रिभुज के बीचोंबीच एक दिल का निशान होता था। यानी वे इसे मुहब्बत से जोड़ते थे।

देश या विदेश में सैकड़ों ऐसे छात्र, शिक्षक, अधिकारी, पत्रकार, रचनाकार और नागरिक मिल जायेंगे जिनको लल्दा (यह नाम उन्हें हम सबकी ओर से अजय रावत ने दिया था) ने अपनी मुहब्बत से विचार और कार्यक्रमों से जोड़ा। ये तमाम लोग अनेक सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक पृष्ठभूमियों से आये थे और वे सभी फिर हम-कदम हो गये।

लल्दा अपने को इतिहास चेतना का प्रचारक मानते थे। कभी हम कहते थे कि प्रचारकों ने तो इस देश में तार्किकता को खारिज कर साम्प्रदायिकता को पाल-पोस लिया है। तो कहते कि खुलकर अपनी बात रखना किसी भी प्रचारक के लिये जरूरी है। ऐसा झूठ प्रसारित करने वाले नहीं कर सकते हैं। देर-सबेर सत्य और तार्किकता की जीत होगी। इसके लिये वे दोस्ती जरूरी मानते थे। वे अलग ही किस्म के वामपंथी थे। पूरी तरह आजाद, उदार और लचीले। वे किसी और अच्छी विचारधारा के मिलने पर प्रचलित वामपंथ को भी छोड़ने को तैयार थे। इसीलिये मैं उनको 'कुजात मार्क्सवादी' कहने का जोखिम उठाता हूं।

मैंने किताबें बेचते हुये कितनी ही बार लल्दा को देखा। छोटा फोल्डर, पोस्टर, पुस्तिका, पुस्तक या पत्रिका। जैसे अनुपम मिश्र 'पर्यावरण के सबसे बड़े बाबू' और 'मास्टर' थे, वैसे ही लाल बहादुर वर्मा 'जन साहित्य और जन इतिहास के सबसे बड़े बाबू' और 'मास्टर' थे। पर वे नाटक में हिस्सेदारी कर सकते थे और कोरस में भी। उनकी दोस्ती के तार चारों तरफ जुड़े थे।

उनसे भिखारी ठाकुर, बॉब डिल्हन, फ़ैज़, नाज़िम हिकमत, गिर्दा या भूपेन हजारिका को एक साथ सुन और गुन सकते थे और संगीत के बाद भृर्तहरि, ब्रेश्ट, नेरुदा या बाबा नागार्जुन की कोई कविता। जब वे दो बार गोलूछीना (अल्मोड़ा) आये तो हमने वीरेन डंगवाल के 'आयेंगे उजले दिन जरूर आयेंगे' गाया था। उनके साथ फ़ैज़, एसडी बर्मन या गिर्दा को गाना मेरी स्मृति का हिस्सा है। अपनी प्रतिभा के इतने प्रकारों को वे बहुत सहजता और स्वाभाविकता से प्रकट होने देते थे। कहीं घूमते हुये भी किसी जनगीत में शामिल होने में उन्हें कभी कोई दिक्कत न थी।

शिक्षण, प्रशिक्षण, लेखन, सम्पादन, संगठन-संस्था निर्माण तथा प्रबोधन के काम में जीवन खपाने वाले मुहब्बत से लबालब लाल को हिमालय से भी सलाम।

साभार : https://www.satyagrah.com/

फिलीस्तीनियों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाना हिंसा के प्रति दुनिया की बेपरवाही का सबूत है

■ अपूर्वानंद

"

फिलीस्तीन के ज़ख़्म से खून धीरे-धीरे रिस रहा है, लेकिन वह हमारी आत्माओं को नहीं छूता। जिस तरह दुनिया का हर मुल्क इस्राइल के साथ गलबहियां करने में एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रहा है, उससे यह साबित होता है कि फिलिस्तीनियों को उनके हाल पर छोड़ दिया गया है।

लिख लो
मैं एक अरब हूं।
मेरे पहचान पत्र का नंबर है 50000
मेरे बच्चे आठ
और नवां गर्मियों के बाद आ रहा है।
क्या तुम नाराज़ हो ?
.....
लिख लो
मैं एक अरब हूं
जिससे लूट लिए गए उसके पुरखों के बागात
और वह ज़मीन
जिसे मैंने और मेरे सारे बच्चों ने जोता था।
कुछ भी नहीं बचा है मेरे और मेरे बच्चों के लिए
सिवाय पत्थरों के...
क्या तुम्हारी सरकार वह भी ले लेगी, जैसी रिपोर्ट सुनी है ?
इसलिए पहले पन्ने में सबसे पहले लिखो
मैं लोगों से नफरत नहीं करता
मैं किसी पर हमला नहीं करता
लेकिन... अगर मैं भूखा रहूं
तो मैं अपने जुल्मी का गोश्त खा जाता हूं
ख़बरदार... ख़बरदार मेरी भूख से
और मेरे गुस्से से।

महमूद दरवेश की ये पंक्तियां 1964 की उनकी कविता पहचान पत्र की हैं। पचपन साल गुजर जाने के बाद भी क्यों ये आज के किसी फिलीस्तीनी की चीख बनी हुई हैं ? 15 मई वह तारीख है जो इस कविता को समझने में मदद करती है।

फिलीस्तीन—हमारी आंखों के आगे एक खोते हुए मुल्क का नाम है। उसे न तो जॉर्डन नदी खा रही है और न ही भूमध्य सागर निगल रहा है। उसका गला इस इंसानी दुनिया की बेहिसी और इस्राइल की क्रूरता घोंट रही है।

15 मई वह तारीख है जो हम सबको याद रहनी चाहिए। इसलिए कि एक आबादी है जिसके दिल पर यह ज़ख्म की तरह है। फिलीस्तीनी इसे आपदा के दिन के तौर पर याद रखते हैं : नकबा।

यह शब्द हर जुबान के कोश में दाखिल किया जाना चाहिए क्योंकि यह शब्द हमें ख़बरदार रखता है कि एक आबादी का बसना दूसरी आबादी के उजड़ने की वजह न बने, यह हमारा फर्ज था और है लेकिन हमने इसे निभाया नहीं है।

नकबा, यह लफ्ज़ हमसे कहता है कि एक पूरी आबादी नज़रबंद या कैद हो या ज़लावतन रहने को मजबूर हो तो इसे हम सबके लिए साझा आपदा होना चाहिए। अफ़सोस ! ऐसा हम महसूस नहीं करते।

इस्राइल 14 मई को अपना स्वतंत्रता दिवस मनाता है और एक दिन बाद 15 को फिलिस्तीनी नकबा को याद करते हैं क्योंकि जो इस्राइल की आज़ादी थी वह उन पर आपदा की तरह ही टूट पड़ी थी। 15 मई, 1948 को अरब फिलीस्तीनियों पर ज़ियानवादी नेताओं के साफ हुक्म पर यहूदी मिलीशिया का जो हमला शुरू हुआ, वह तकरीबन 8 महीने तक चला रहा। दहशतगर्दी के हर तरीके को अपनाया गया।

गांवों और शहरों पर बमबारी, औरतों के साथ बलात्कार, जन संहार, दस बरस से ज्यादा उम्र के लड़कों या पुरूषों को लेबर कैंपों में बंद रखना, इस्राइल ने फिलिस्तीनियों के नस्ली सफाये का अभियान आज तक बंद नहीं किया है।

इस्राइली इतिहासकार इलान पापे कहते हैं कि इस्राइल ने फिलीस्तीनियों के साथ जो किया उसे नस्ली सफाया कहा जाना चाहिए क्योंकि ज़ियानवादियों ने साफ-साफ, विस्तृत योजना बनाई और अपनी मिलिशिया को निर्देश दिया कि किस तरह फिलीस्तीनी इलाकों को यहूदी बहुल बनाने के लिए अरब फिलीस्तीनियों से उन्हें खाली किया जाना चाहिए। यह सिलसिला आज भी बंद नहीं हुआ है। अंतरराष्ट्रीय समझ है कि नस्ली सफाया वह है जिसमें एक जातीय समूह, दूसरे को पूरा या आंशिक तौर पर किसी इलाके से बाहर करे या उसे खत्म कर दे।

पापे ने बताया है कि 1948 से 1956 के बैच और भी फिलीस्तीनी ग्रामीणों को वतन बदर किया गया, 1967 की जंग के दौरान गाजा पट्टी और पश्चिमी तट से जबर्दस्ती 3,00,000 फिलस्तीनियों को बाहर करना और एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत वृहत्तर जेरुसलम से तकरीबन 2,00,000 फिलस्तीनियों को बाहर कर देना।

जो फिलीस्तीनी अपने इलाकों में बचे रह गए हैं, उन पर रोज़-रोज़ नई तरकीबों से घेरा कसा जा रहा है। गाजा पट्टी को खुली जेल भी नहीं कहा जा सकता। उसके चारों ओर ऊंची दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। इस्राइल ने यह भी कहा है कि वह दुनिया के मत की परवाह किए बगैर बचे हुए इलाके पर भी कब्ज़ा करना चाहता है। गैरकानूनी तरीके से फिलीस्तीनी इलाकों में यहूदियों को बसाया जा रहा है।

फिलीस्तीन के ज़ख्म से खून धीरे-धीरे रिस रहा है, लेकिन वह हमारी आत्माओं को नहीं छूता। अभी जो लाखों फिलीस्तीनी लावतन (जिसका कोई देश न हो) हैं, क्या उन्हें अपने देश लौटने का हक नहीं है?

क्या हम इस्राइल के झूठ को सच मन लेंगे कि जिस जगह उसने अपने पांव रोपे, वह खाली ज़मीन थी? क्या हम भूल जाएंगे कि अंग्रेजों ने जब इस इलाके पर कब्जा किया, उस वक्त वहां की आबादी में सिर्फ 11प्रतिशत यहूदी थे और बाकी लाखों अरब, मुसलमान और ईसाई?

नकबा को याद रखना ज़रूरी है। यूरोप से निकाले गए यहूदियों ने फिलीस्तीनियों के साथ खुद वही किया, जो उनके साथ किया गया था। यूरोप ने अपनी नैतिक कमजोरी और अपराध को छिपाने के लिए एक नए अपराध को जन्म दिया। अमेरिका और बाकी दुनिया अब उसमें शरीक है।

अब हालात ऐसे हैं कि इस्राइल की इस ज्यादती, जो अपने आपमें बहुत हल्का शब्द है, के बारे में चर्चा भर को यहूदी विरोधी घृणा कहकर उसे जुर्म बता दिया जाता है। इस तरह अब इस्राइल की फिलीस्तीन विरोधी नफरत को जायज़ ठहराया जा रहा है।

जिस तरह हाल में अमेरिका में फिलीस्तीन के अधिकार की बात करने वाली अमेरिकी कांग्रेस के सदस्यों पर चौतरफा हमला किया गया है, उससे यह साफ हो गया है कि अब फिलीस्तीन की आज़ादी की बात या इस्राइल के जुल्म को ही यहूदी विरोध कहकर उसे अप्रासंगिक ठहराया जा रहा है।

अब कोई फिलीस्तीनियों के अपने देश के अधिकार की चर्चा भी नहीं कर रहा। लेकिन इस धोखाधड़ी का मतलब यह नहीं है कि यह सवाल ही नहीं है। अभी भी जो लाखों फिलीस्तीनी वतनबदर हैं, उन्हें अपने देश लौटने का अधिकार है।

फिलीस्तीन में हमास नामक संगठन के अस्तित्व के बहाने से यह कहा जाता है कि चूंकि इस्राइली हमेशा उसके हमलों के शिकार हैं, उन्हें अपनी रक्षा करने का अधिकार है। लेकिन दोनों की ताकत में कोई बराबरी नहीं। हमास के नाम पर हर फिलीस्तीनी को संभावित या छिपा दहशतगर्द बताना एक बड़ा झूठ या धोखा है जिसमें दुनिया इस्राइल का साथ दे रही है। यह ठीक है कि हमास के तरीके को जायज़ नहीं ठहराया जा सकता लेकिन इस्राइल जैसे ताकतवर राज्य की हिंसा पर बात नहीं करना कहीं बड़ा अपराध है।

यह कतई मुमकिन होना चाहिए कि जॉर्डन नदी और भूमध्य सागर के बीच एक राज्य हो, जिसमें यहूदी, फिलीस्तीनी, मुसलमान, ईसाई, सभी एक राष्ट्र की तरह रह सकें, लेकिन इस्राइल ने खुद को पहले यहूदियों का राष्ट्र घोषित करके अपना इरादा साफ कर दिया है कि उसे बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक राष्ट्र की अवधारणा में विश्वास नहीं है।

जिस तरह दुनिया का हर मुल्क इस्राइल के साथ गलबहियां करने में एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रहा है, उससे यह साबित होता है कि फिलीस्तीनियों को उनके हाल पर छोड़ दिया गया है। यह हिंसा के प्रति इस दुनिया की बेपरवाही का सबूत है।

भारत ने अपनी आज़ादी के आंदोलन के दिनों में भी बार-बार फिलीस्तीनियों के अधिकार की वकालत की थी, बाद में भी वह उनका हमदर्द बना रहा, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से भारत में भी बहुसंख्यकवाद के आक्रामक होने के साथ इस्राइल के प्रति आकर्षण बढ़ा है।

पापे का यह कहना ठीक है कि जब तक 15 मई के दिन को नस्ली सफाये की शुरुआत के तौर पर कबूल नहीं किया जाएगा, हिंसा के अंत की भी शुरुआत नहीं होगी। दरवेश का क्रोध पीढ़ी दर पीढ़ी तक बढ़ता ही जाएगा और यह जितना फिलीस्तीन के लिए बुरा होगा, उससे कम इस्राइल के लिए नहीं।

फिलीस्तीन : दो कवितांश

■ **महमूद दरवेश**

हमारे देश में
लोग मेरे दोस्त के बारे में
बहुत बातें करते हैं
कैसे वह गया और फिर नहीं लौटा
कैसे उसने अपनी जवानी खो दी
गोलियों की बौछारों ने
उसके चेहरे और छाती को बींध डाला
बस और मत कहना
मैंने उसका घाव देखा है
मैंने उसका असर देखा है
कितना बड़ा था वह घाव
मैं हमारे दूसरे बच्चों के बारे में सोच रहा हूँ
और हर उस औरत के बारे में
जो बच्चागाड़ी लेकर चल रही है
दोस्तो, यह मत पूछो वह कब आयेगा
बस यही पूछो
कि लोग कब उठेंगे ?

आओ ! दुख और जंजीर के साथियों
हम चलें कुछ भी न हारने के लिए
कुछ भी न खोने के लिए
सिवा अर्थियों के
आकाश के लिए हम गायेंगे
भेजेंगे अपनी आशाएँ
कारख़ानों और खेतों और खदानों में
हम गायेंगे और छोड़ देंगे
अपने छिपने की जगह
हम सामना करेंगे सूरज का
हमारे दुश्मन गाते हैं =
'वे अरब हैं—क्रूर हैं—'
हाँ, हम अरब हैं
हम निर्माण करना जानते हैं
हम जानते हैं बनाना
कारख़ाने अस्पताल और मकान
विद्यालय
हम जानते हैं
कैसे लिखी जाती है सुन्दर कविता
और संगीत—
हम जानते हैं।

साभार : http://www.mazdoorbigul.net/

इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस, 62–ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली–110067,
भारत, टेलीफोन : 091–011–26177904, टेलीफैक्स : 091–011–26177904
ई–मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : www.isd.net.in
केवल सीमित वितरण के लिए